जैनधर्म की उदारता

लेखक—

परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थ

ॐ

जैनधर्म की उदारता

लेखक—

पंडित परमेष्ठीदासजी जैन न्यायतीर्थ

प्रकाशक—

जौहरीमलजी जैनी सर्राफ

दरीबा कलाँ, देहली।

प्रथमवार १००० | सन् १९३४ वीर निर्वाण संवत् २४६० | मूल्य =)॥

गयादत्त प्रेस, बाग दिवार देहली में छपा।

विषयानुक्रमणिका।

			पृष्ठ
१–पापियों का उद्धार	...	...	१
२–उच्च और नीचों में समभाव	...	...	६
३–जाति भेद का आधार आचरण पर है	...		८
४–वर्ण परिवर्तन	...	...	१३
५–गोत्र परिवर्तन	...	...	१६
६–पतितों का उद्धार	...	...	१८
७–शास्त्रीय दण्ड विधान	...	...	२५
८–अत्याचारी दण्ड विधान	...	...	२९
९–उदारता के उदाहरण	...	...	३३
१०–जैनधर्म में शूद्रों के अधिकार	...	...	३९
११–स्त्रियों के अधिकार	...	...	४७
१२–वैवाहिक उदारता	...	...	५४
१३–उपसंहार	...	...	५८

नम्र निवेदन

जहाँ उदारता है, प्रेम है, और सम भाव है, वहीं धर्म का निवास है। जगत को आज ऐसे ही उदार धर्म की आवश्यक्ता है। हम ईसाइयों के धर्म प्रचार को देखकर ईर्षा करते हैं, आर्य समाजियों की कार्य कुशलता पर आश्चर्य करते हैं और बौद्ध, ईशु, ख्रीस्त, दयानन्द सरस्वती आदि के नामोल्लेख तथा भगवान महावीर का नाम न देख कर दुखी हो जाते हैं! इसका कारण यही है कि उन उन धर्मानुयाइयों ने अपने धर्म की उदारता बताकर जनता को अपनी ओर आकर्षित कर लिया है और हम अपने जैनधर्म की उदारता को दबाते रहे, कुचलते रहे और उसका गला घोंटते रहे! तब बताइये कि हमारे धर्म को कौन जान सकता है, भगवान महावीर को कौन पहिचान सकता है और उदार जैनधर्म का प्रचार कैसे हो सकता है?

इस छोटी सी पुस्तक में यह बताने का प्रयत्न किया गया है कि 'जैनधर्म की उदारता' जगत के प्रत्येक प्राणी को प्रत्येक दशा में अपना सकती है और उसका उद्धार कर सकती है। आशा है कि पाठकगण इसे आद्योपान्त पढ़ कर अपने कर्तव्य को पहिचानेंगे।

चन्दावाड़ी सूरत
४-२-३४

परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थ

आवश्यकीय निवेदन

यह पुस्तक सहारनपुर निवासी बाबू रामदत्तामलजी खजाँची रेलवे के सुपुत्र चिरंजीव रतनलाल के शुभ विवाहोपलक्ष में, जो ता० ६ मार्च १६३४ ईस्वी को सौभाग्यवती शांति देवी सुपुत्री लाला जौहरीमल जैन सर्राफ के साथ सम्पन्न हुआ, प्रकाशित की गई।

—प्रकाशक

चि० रतनलाल (सुपुत्र बाबु रामरत्नामल खजांची रतन)
सहारनपुर निवासी।

भूमिका

लोक में तीन भावनायें कार्य करती मिलती हैं। उनके कारण प्रत्येक प्राणी (१) आत्मस्वातंत्र्य (२) आत्म महत्व और (३) आत्मसुख की अकांक्षा रखता है। निस्सन्देह सब को स्वाधीनता प्रिय है; सब ही महत्वशाली बनना चाहते हैं और सब ही सुख शांति चाहते हैं। मनुष्येतर प्राणी अपनी अबोधता के कारण इन का स्पष्ट प्रदर्शन भले नहीं कर पाते पर, वह जैसी परिस्थिति में होते हैं वैसे में ही मग्न रह कर दिन पूरे कर डालते हैं। किन्तु मनुष्यों में उनसे विशेषता है। उसमें मनन करने की शक्ति विद्यमान है। अच्छे बुरे को अच्छे से ढंग पर जानना वह जानते हैं। विवेक मनुष्य का मुख्य लक्षण है। इस विवेक ने मनुष्य के लिये 'धर्म' का विधान किया है। उसका स्वभाव—उसके लिये सब कुछ अच्छा ही अच्छा धर्म है! उसका धर्म उसे आत्मस्वातंत्र्य, आत्म महत्व और आत्म सुख नसीब कराता है।

किन्तु ससार में तो अनेक मत मतान्तर फैल रहे हैं और सब ही अपने को श्रेष्ठतम घोषित करने में गर्व करते हैं। अब भला कोई किस को सत्य माने? किन्तु उनमें 'धर्म' का अंश वस्तुतः कितना है, यह उनके उदार रूप से जाना जा सक्ता है। यदि वे प्राणीमात्र को समान रूप में धर्म सिद्धि अथवा आत्म सिद्धि कराते हैं—किसी के लिए विरोध उपस्थित नहीं करते तो उन को यथार्थ धर्म मानना ठीक है। परन्तु बात दर-असल यूं नहीं है।

इस्लाम यदि मुस्लिम जगत में भ्रातृभाव को सिरजता है तो मुस्लिम-बाह्य-जगत उसके निकट 'काफिर'—उपेक्षा जन्य है। पशु जगत के लिए उसमें ठौर नहीं—पशुओं को वह अपनी आसाइश की वस्तु समझता है! तब आज के इस्लाम वाले 'धर्म' का दावा किस तरह कर सक्ते हैं, यह पाठक स्वयं विचारें।

वैदिक धर्म इस्लाम से भी पिछड़ा मिलता है। सारे वैदिक-धर्मानुयायी उसमें एक नहीं हैं! वर्णाश्रम धर्म—रक्त शुद्धि की भ्रान्तमय धारणा पर एक वेद भगवान के उपासकों को वे टुकड़ों टुकड़ों में बांट देते हैं। शूद्रों और स्त्रियों के लिए वेद-पाठ करना भी वर्जित कर दिया जाता है। जब मनुष्यों के प्रति यह अनुदारता है, तब भला कहिये पशु-पक्षियों की वहाँ क्या पूछ होगी? शायद पाठकगण ईसाई मत को 'धर्म' के अति निकट समझें! किन्तु आज का ईसाई जगत अपने दैनिक व्यवहार में अपने को 'धर्म' से बहुत दूर प्रमाणित करता है। अमेरिका में काले-गोरे का भेद—यूरोप में एक दूसरे को हड़प जाने की दुर्नीति ईसाईयों को विवेक से अति दूर भटका सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है।

सचमुच यथार्थ 'धर्म' प्राणीमात्र को समान रूप में सुख-शान्ति प्रदान करता है—उसमें भेद भाव हो ही नहीं सकता! मनुष्य मनुष्य का भेद अप्राकृतिक है! एक देश और एक जाति के लोग भी काले-गोरे-पीले-उच्च-नीच-विद्वान-मूढ-निर्बल-सबल—सब ही तरह के मिलते हैं। एक ही मां की कोख से जन्मे दो पुत्र परस्पर-विरुद्ध प्रकृति और आचरण को लिए हुए दिखते हैं। इस स्थिति में जन्मगत अन्तर उनमें नहीं माना जा सक्ता। हम कह चुके हैं कि धर्म जीव मात्र का आत्म-स्वभाव (अपना २ धर्म) है।

इस लिये धर्म में यह अनुदारता हो ही नहीं सक्ती कि वह किन्हीं खास प्राणियों से राग करके उन्हें तो अपना अंकशायी बनाकर उच्च पद प्रदान करदे और किन्हीं को द्वेष भाव में बहाकर आत्मोत्थान करने से ही वञ्चित रक्खे। सच्चा धर्म वह होगा जिसमें जीवमात्र के आत्मोत्थान के लिये स्थान हो। प्रस्तुत पुस्तक को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि निस्सन्देह जैनधर्म एक परमोदार सत्य धर्म है—वह जीवमात्र का कल्याणकर्ता है! धर्म का यथार्थ लक्षण उसमें घटित होता है।

विद्वान् लेखक ने जैन शास्त्रों के अगणित प्रमाणों द्वारा अपने विषय को स्पष्ट कर दिया है। ज्ञानी जीवों को उनके इस सद्प्रयास से लाभ उठाकर अपने मिथ्यात्व जाति मद की मदांधता को नष्ट कर डालना चाहिये। और जगत को अपने बर्ताव से यह बता देना चाहिये कि जैनधर्म वस्तुतः सत्य धर्म है और उस के द्वारा प्रत्येक प्राणी अपनी जीवन आकांक्षाओं को पूरा कर सक्ता है। जैनधर्म हर स्थिति के प्राणी को आत्म स्वातंत्र्य, आत्म महत्व और आत्म सुख प्रदान करता है। जन्मगत श्रेष्ठता मानकर मनुष्य के आत्मोत्थान को रोक डालने का पाप उसमें नहीं है। मित्रवर पं० परमेष्ठीदासजी न्यायतीर्थ का ज्ञानोद्योत का यह प्रयास अभिनन्दनीय है! इसका प्रकाश मनुष्य हृदय को आलोकित करे यह भावना है। इति शम।

कामताप्रसाद जैन,

एम. आर. ए. एस. (लन्दन)

सम्पादक 'वीर' अलीगंज।

अभिप्राय

विद्यावारिधि जैन दर्शन दिवाकर पं० चम्पतरायजी जैन बैरिस्टर ने 'जैनधर्म की उदारता' को आद्योपान्त पढ़ कर जो अपना लिखित अभिप्राय दिया है वह इस प्रकार है—

'जैनधर्म की उदारता' नामक यह पुस्तक बड़ी ही सुन्दर है। इसमें जैनधर्म के असली स्वरूप को विद्वान लेखक ने बड़ी खूबी से दर्शाया है। उदाहरण सब शास्त्रीय हैं। और उनमें ऐतराज की कोई गुंजाइश नहीं है। वर्ण व्यवस्था वास्तव में पोलिटीकल उन्नति और कयाम (स्थिति) के लिये थी, न कि आदमियों को भिन्न२ जातियों में विभाजित करने के लिये। जैनधर्म सब प्राणियों के लिये है। किसी को अख्तयार नहीं है कि दूसरे के धर्म साधन में बाधक हो सके।

जिस अर्थ में गोत्रकर्म भाव राजवार्तिक में दिखाया गया है उस भाव में लेखक का कथन समाविष्ट हो जाता है। लेकिन गोत्र-कर्म शायद अपने असली स्वभाव में उस आकर्षण शक्ति के ऊपर निर्भर है जिसके द्वारा प्राणी उच्च या नीच योनि में खिंचकर पहुँच जाता है। ऐसी दशा में गोत्रकर्म का संबंध पैदायश के समय से ही ठीक जुड़ता है।

अन्त में मैं इस बात को कहना चाहता हूँ कि ऐसी पुस्तकों से जैनधर्म का महत्व प्रगट होता है। इनकी क़द्र होनी चाहिये।

C. R. Jain

परमेष्ठिने नमः ।

जैनधर्म की उदारता ।

पापियों का उद्धार ।

जो प्राणियों का उद्धारक हो उसे धर्म कहते हैं । इसी लिये धर्म का व्यापक, सार्व या उदार होना आवश्यक है। जहाँ संकुचित दृष्टि है, स्वपर का पक्षपात है, शारीरिक अच्छाई बुराई के कारण आन्तरिक नीच ऊँचपने का भेद भाव है वहाँ धर्म नहीं हो सकता। धर्म आत्मिक होता है शारीरिक नहीं। शरीर की दृष्टि से तो कोई भी पवित्र नहीं है। शरीर सभी अपवित्र हैं, इस लिये आत्मा के साथ धर्म का संबंध मानना ही विवेक है । लोग जिस शरीर को ऊँचा समझते हैं उस शरीर वाले कुगति में भी गये हैं और जिनके शरीर नीच समझे जाते हैं वे भी सुगति को प्राप्त हुये हैं। इस लिये यह निर्विवाद सिद्ध है कि धर्म चमड़े में नहीं किन्तु आत्मा में होता है । इसी लिये जैन धर्म इस बात को स्पष्टतया प्रतिपादित करता है कि प्रत्येक प्राणी अपनी सुकृति के अनुसार उच्च पद प्राप्त कर सकता है। जैनधर्म का शरण लेने के लिये उसका द्वार सब के लिये सर्वदा खुला है। इस बात को रविषेणाचार्य ने इस प्रकार स्पष्ट किया है कि—

> अनाथानामबंधूनां दरिद्राणां सुदुःखिनाम् ।
> जिनशासनमेतद्धि परमं शरणं मतम् ॥

अर्थात्—जो अनाथ हैं, बांधव विहीन हैं, दरिद्री हैं, अत्यन्त दुखी हैं उनके लिए जैनधर्म परम शरणभूत है।

यहाँ पर कल्पित जातियों या वर्णों का उल्लेख न करके सर्व साधारण को जैनधर्म ही एक शरणभूत बतलाया गया है। जैनधर्म में मनुष्यों की तो बात क्या पशु पक्षी या प्राणीमात्र के कल्याण का भी विचार किया गया है।

आत्मा का सच्चा हितैषी, जगत के प्राणियों को पार लगाने वाला, महा मिथ्यात्व के गड्ढे से निकाल कर सन्मार्ग पर आरूढ़ करा देने वाला और प्राणीमात्र को प्रेम का पाठ पढ़ाने वाला सर्वज्ञ कथित एक जैनधर्म है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रत्येक धर्मावलम्बी की अपने अपने धर्म के विषय में यही धारणा रहती है, किन्तु उसको सत्य सिद्ध कर दिखाना कठिन है। जैनधर्म सिखाता है कि अहम्मन्यता को छोड़ कर मनुष्य से मनुष्यता का व्यवहार करो, प्राणीमात्र से मैत्रीभाव रखो, और निरंतर परहित निरत रहो। मनुष्य ही नहीं पशुओं तक के कल्याण का उपाय सोचो और उन्हें घोर दुःख दावानल से निकालो।

धर्म शास्त्र इसके ज्वलंत प्रमाण हैं कि जैनाचार्यों ने हाथी, सिंह, शृगाल, शूकर, बन्दर, नौला, आदि प्राणियों को भी धर्मोपदेश देकर उनका कल्याण किया था। (देखो आदिपुराण पर्व १० श्लोक १४९) इसी लिये महात्माओं को अकारणबंधु कह कर पुकारा गया है। एक सच्चे जैन का कर्तव्य है कि वह महा दुराचारी को भी धर्मोपदेश देकर उसका कल्याण करे। इस संबंध में अनेक उदाहरण जैन शास्त्रों में भरे पड़े हैं।

जिनभक्त धनदत्त सेठ ने महाव्यसनी वेश्यासक्त दृढ़सूर्य को फांसी पर लटका हुआ देख कर वहीं पर णमोकार मंत्र दिया था, जिसके प्रभाव से वह पापात्मा पुण्यात्मा बनकर देव हुआ था। वही देव धनदत्त सेठ की स्तुति करता हुआ कहता है कि—

अहो श्रेष्ठिन् ! जिनाधीशचरणार्चनकोविद ।
अहं चौरो महापापी दृढ़सूर्याभिधानकः ॥३१॥
त्वत्प्रसादेन भो स्वामिन् स्वर्गे सौधर्मसंज्ञके ।
देवो महर्द्धिको जातो ज्ञात्वा पूर्वभवं सुधीः ॥३२॥

—आराधनाकथा नं० २३ वीं ।

अर्थात्—जिन चरण पूजन में चतुर हे श्रेष्ठी ! मैं दृढ़सूर्य नामक महापापी चोर आपके प्रसाद से सौधर्म स्वर्ग में ऋद्धिधारी देव हुआ हूँ ।

इस कथा से यह तात्पर्य निकलता है कि प्रत्येक जैन का कर्तव्य महापापी को भी पाप मार्ग से निकाल कर सन्मार्ग में लगाने का है । जैनधर्म में यह शक्ति है कि वह महापापियों को शुद्ध करके शुभगति में पहुँचा सकता है। यदि जैनधर्म की उदारता पर विचार किया जावे तो स्पष्ट मालूम होगा कि विश्वधर्म बनने की इसमें शक्ति है या जैनधर्म ही विश्वधर्म हो सकता है । जैनाचार्यों ने ऐसे ऐसे पापियों को पुण्यात्मा बनाया है कि जिनकी कथायें सुनकर पाठक आश्चर्य करेंगे ।

अनंगसेना नाम की वेश्या अपने वेश्या कर्म को छोड़कर जैन दीक्षा ग्रहण करती है और जैनधर्म की आराधना करके स्वर्ग में जाती है। इसके अतिरिक्त यशोधर मुनि महाराज ने मत्स्यभक्षी मृगसेन धीवर को णमोकार मंत्र दिया और व्रत ग्रहण कराया, जिससे वह मर कर श्रेष्ठिकुल में उत्पन्न हुआ। यमपाल चाण्डाल की कथा तो जैनधर्म की उदारता प्रगट करने को सूर्य के समान है। जिस चाण्डाल का काम लोगों को फांसी पर लटका कर प्राण नाश करना था वही अछूत कहा जानेवाला पापात्मा थोड़े से व्रत के कारण देवों द्वारा अभिषिक्त और पूज्य हो जाता है। यथा—

तदा तद्व्रतमाहात्म्यात्महाधर्मानुरागतः ।
सिंहासने समारोप्य देवताभिः शुभैर्जलैः ॥ २६॥
अभिषिच्य महर्षेण दिव्यवस्त्रादिभिः सुधीः ।
नानारत्नसुवर्णाद्यैः पूजितः परमादरात् ॥२७॥

अर्थात्—उस यमपाल चाण्डाल को व्रत के महात्म्य से तथा धर्मानुराग से देवों ने सिंहासन पर विराजमान करके उसका अच्छे जल से अभिषेक किया और अनेक वस्त्र तथा आभूषणों से सन्मान किया ।

इतना ही नहीं किन्तु राजा ने भी उस चाण्डाल के प्रति नम्रीभूत हो कर उस से क्षमा याचना की थी तथा स्वयं भी उस की प्रतिष्ठा की थी । यथा—

तं प्रभावं समालोक्य राजाद्यैः परया मुदा ।
अभ्यर्चितः स मातंगो यमपालो गुणोज्वलः ॥२८॥

अर्थात—उस चाण्डाल के व्रत प्रभाव को देखकर राजा तथा प्रजा ने बड़े ही हर्ष के साथ गुणों से समुज्वल उस यमपाल चाण्डाल की पूजा की थी ।

देखिये यह कितनी आदर्श उदारता है । गुणों के सामने न तो हीन जाति का विचार हुआ और न उसकी अस्पृश्यता ही देखी गई । मात्र एक चाण्डाल के दृढ़व्रती होने के कारण ही उस का अभिषेक और पूजन तक किया गया । यह है जैनधर्म की सच्ची उदारता का एक नमूना ! इसी प्रकरण में जाति मद न करने की शिक्षा देते हुये स्पष्ट लिखा है कि—

चाण्डालोऽपि व्रतोपेतः पूजितः देवतादिभिः ।
तस्मादन्यैर्न विप्राद्यैर्जातिगर्वो विधीयते ॥३०॥

अर्थात्--व्रतों से युक्त चाण्डाल भी देवों द्वारा पूजा गया इस लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों को अपनी जाति का गर्व नहीं करना चाहिये।

यहाँ पर जातिमद का कैसा सुन्दर निराकरण किया गया है! जैनाचार्यों ने नीच ऊँच का भेद मिटाकर, जाति पांति का पचड़ा तोड़ कर और वर्ण भेद को महत्व न देकर स्पष्ट रूप से गुणों को ही कल्याणकारी बताया है। अमितगति आचार्य ने इसी बात को इन शब्दों में लिखा है कि--

शीलवन्तो गताः स्वर्गे नीचजातिभवा अपि।
कुलीना नरकं प्राप्ताः शीलसंयमनाशिनः॥

अर्थात्—जिन्हें नीच जाति में उत्पन्न हुआ कहा जाता है वे शील धर्म को धारण करके स्वर्ग गये हैं और जिन के लिये उच्च कुलीन होने का मद किया जाता है ऐसे दुराचारी मनुष्य नरक गये हैं।

इस प्रकार के उद्धरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जितनी उदारता, जितना वात्सल्य और जितना अधिकार जैनधर्म ने ऊंच नीच सभी मनुष्यों को दिया है उतना अन्य धर्मों में नहीं हो सकता। जैनधर्म में ही यह विशेषता है कि प्रत्येक व्यक्ति नर से नारायण हो सकता है। मनुष्य की बात तो दूर रही मगर भगवान समन्तभद्र के कथनानुसार तो—

"श्वाऽपि देवोऽपि देवः श्वा जायते धर्मकिल्विषात्"

अर्थात्—धर्म धारण करके कुत्ता भी देव हो सकता है और पाप के कारण देव भी कुत्ता हो जाता है।

उच्च और नीचों में समभाव।

इसी प्रकार जैनाचार्यों ने पद पद पर स्पष्ट उपदेश दिया है कि प्रत्येक जिज्ञासुको धर्म मार्ग बतलाओ, उसे दुष्कर्म छोड़ने का उपदेश दो और यदि वह सच्चे रास्ते पर आ जावे तो उसके साथ बन्धु सम व्यवहार करो। सच बात तो यह है कि ऊँचों को ऊँच नहीं बनाया जाता, वह तो स्वयं ऊँच हैं ही। मगर जो भ्रष्ट हैं, पद च्युत हैं, पतित हैं, उन्हें जो उच्च पद पर स्थित करदे वही उदार एवं सच्चा धर्म है। यह खूबी इस पतित पावन जैनधर्म में है। इस संबंध में जैनाचार्यों ने कई स्थानों पर स्पष्ट विवेचन किया है। पंचाध्यायीकार ने स्थितिकरण का विवेचन करते हुये लिखा है कि—

सुस्थितीकरणं नाम परेषां सदनुग्रहात्।
भ्रष्टानां स्वपदात्तत्र स्थापनं तत्पदे पुनः ॥८०७॥

अर्थात्—निज पद से भ्रष्ट हुये लोगों को अनुग्रह पूर्वक उसी पद में पुनः स्थित कर देना ही स्थितिकरण अंग है।

इस से यह सिद्ध है कि चाहे जिस प्रकार से भ्रष्ट या पतित हुये व्यक्तिको पुनः शुद्ध कर लेना चाहिये और उसे फिर से अपने उच्च पद पर स्थित कर देना चाहिये। यही धर्म का वास्तविक अंग है। निर्विचिकित्सा अंग का वर्णन करते हुये भी इसी प्रकार उदारतापूर्ण कथन किया गया है। यथा—

दुर्दैवाद्दुःखिते पुंसि तीव्रासाताघृणास्पदे।
यन्नादयापरं चेतः स्मृतो निर्विचिकित्सकः ॥५८३॥

अर्थात्—जो पुरुष दुर्दैव के कारण दुखी है और तीव्र असाता के कारण घृणा का स्थान बन गया है उसके प्रति अदयापूर्ण चित्त का न होना ही निर्विचिकित्सा है।

बड़े ही खेद का विषय है कि हम आज सम्यक्त के इस प्रधान अंग को भूल गये हैं और अभिमान के वशीभूत हो कर अपने को ही सर्व श्रेष्ठ समझते हैं। तथा दीन दरिद्री और दुखियों को नित्य ठुकरा कर जाति मद में मत्त रहते हैं। ऐसे अभिमानियों का मस्तक नीचा करनेके लिये पंचाध्यायीकार ने स्पष्ट लिखा है कि—

नैतत्तन्मनस्यज्ञानमस्म्यहं सम्पदां पदम्।
नासावस्मत्समो दीनो वराको विपदां पदम् ॥५८४॥

अर्थात्-मन में इस प्रकार का अज्ञान नहीं होना चाहिये कि मैं तो श्रीमान् हूँ, बड़ा हूं, अतः यह विपत्तियोंका मारा दीनदरिद्री हमारे समान नहीं हो सकता है। प्रत्युत प्रत्येक दीन हीन व्यक्ति के प्रति समानता का व्यवहार रखना चाहिये। जो व्यक्ति जाति मद या धन मद में मत्त होकर अपने को बड़ा मानता है वह मूर्ख है, अज्ञानी है। लेकिन जिसे मनुष्य तो क्या प्राणीमात्र सदृश मालूम हों वही सम्यग्दृष्टि है, वही ज्ञानी है, वही मान्य है, वही उच्च है, वही विद्वान् है, वही विवेकी है और वही सच्चा पण्डित है। मनुष्यों की तो बात क्या किन्तु त्रस स्थावर प्राणीमात्र के प्रति सम भाव रखने का पंचाध्यायीकार ने उपदेश दिया है। यथा—

प्रत्युत ज्ञानमेवैतत्तत्र कर्मविपाकजाः।
प्राणिनः सदृशाः सर्वे त्रसस्थावरयोनयः ॥५८५॥

अर्थात्—दीन हीन प्राणियों के प्रति घृणा नहीं करना चाहिये प्रत्युत ऐसा विचार करना चाहिये कि कर्मों के मारे यह जीव त्रस और स्थावर योनिमें उत्पन्न हुये हैं, लेकिन हैं सब समान ही।

तात्पर्य यह है कि नीच ऊँच का भेदभाव रखने वाले को महा अज्ञानी बताया है और प्राणीमात्र पर सम भाव रखने वाले को सम्यग्दृष्टि और सच्चा ज्ञानी कहा है। इन बातों पर हमें विचार

करने की आवश्यकता है। जैनधर्म की उदारता को हमें अब कार्य रूप में परिणत करना चाहिये। एक सच्चे जैनी के हृदय में न तो जाति मद हो सकता है, न ऐश्वर्य का अभिमान हो सकता है और न पापी या पतितों के प्रति घृणा ही हो सकती है। प्रत्युत वह तो उन्हें पवित्र बनाकर अपने आसन पर बिठायगा और जैनधर्म की उदारता को जगत में व्याप्त करने का प्रयत्न करेगा। खेद है कि भगवान महावीर स्वामी ने जिस वर्ण भेद और जाति मद को चकनाचूर करके धर्म का प्रकाश किया था, उन्हीं महावीर स्वामी के अनुयायी आज उसी जाति मद को पुष्ट कर रहे हैं।

जाति भेद का आधार आचरण पर है।

ढाई हजार वर्ष पूर्व जब लोग जाति मद में मत्त होकर मन माने अत्याचार कर रहे थे और मात्र ब्राह्मण ही अपने को धर्माधिकारी मान बैठे थे तब भगवान् महावीर स्वामी ने अपने दिव्योपदेश द्वारा जाति मूढता जनता में से निकाल दी थी और तमाम वर्ण एवं जातियों को धर्म धारण करने का समानाधिकारी घोषित किया था। यही कारण है कि स्व० लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने सच्चे हृदय से यह शब्द प्रगट किये थे कि—

"ब्राह्मणधर्म में एक त्रुटि यह थी कि चारों वर्णों अर्थात ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों को समानाधिकार प्राप्त नहीं थे। यज्ञ यागादिक कर्म केवल ब्राह्मण ही करते थे। क्षत्रिय और वैश्यों को यह अधिकार प्राप्त नहीं था। और शूद्र विचारे तो ऐसे बहुत विषयों में अभागे थे। जैनधर्म ने इस त्रुटि को भी पूर्ण किया है।" इत्यादि।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि जैनधर्म ने महान् अधम से अधम

और पतित से पतित शूद्र कहलाने वाले मनुष्यों को उस समय अपनाया था जब कि ब्राह्मण जाति उनके साथ पशु तुल्य ही नहीं किन्तु इससे भी अधम व्यवहार करती थी। जैनधर्म का दावा है कि घोर पापी से पापी या अधम नीच कहा जाने वाला व्यक्ति जैन धर्म की शरण लेकर निष्पाप और उच्च हो सकता है। यथा—

महापापप्रकर्ताऽपि प्राणी श्रीजैनधर्मतः।
भवेत् त्रैलोक्यसंपूज्यो धर्मात्किं भो परं शुभम्।

अर्थात्—घोर पाप को करने वाला प्राणी भी जैन धर्म धारण करने से त्रैलोक्य पूज्य हो सकता है।

जैनधर्म की उदारता इसी बात से स्पष्ट है कि इसको मनुष्य, देव, तिर्यञ्च और नारकी सभी धारण करके अपना कल्याण कर सकते हैं। जैनधर्म पाप का विरोधी है पापी का नहीं। यदि वह पापी का भी विरोध करने लगे, उनसे घृणा करने लग जावे तो फिर कोई भी अधम पर्याय वाला उच्च पर्याय को नहीं पा सकेगा और शुभाशुभ कर्मों की तमाम व्यवस्था ही बिगड़ जायगी। कथा ग्रन्थों से पता लगेगा कि जैनधर्म ने नीचातिनीच पापात्माओं को पवित्र करके परमपद पर पहुंचाया है।

कपिल ब्राह्मण ने गुरुदत्त मुनि को आग लगाकर जला डाला था, फिर भी वह पापी अपने पापों का पश्चात्ताप करके स्वयं मुनि होगया था। ज्येष्ठा आर्यिका ने एक मुनि से शील भ्रष्ट होकर पुत्र प्रसव किया था, फिर भी वह पुनः शुद्ध होकर आर्यिका होगई थी और स्वर्ग गई। राजा मधु ने अपने माण्डलिक राजा की स्त्री को अपने यहां बलात्कार से रख लिया था और उससे विषय भोग करता था, फिर भी वह दोनों मुनि दान देते थे और अन्त में दोनों

ही दीक्षा लेकर अच्युत स्वर्ग में गये। शिवभूति ब्राह्मण की पुत्री देववती के साथ शम्भू ने व्यभिचार किया, बाद में वह भ्रष्ट देववती विरक्त होकर हरिकान्ता नामक आर्यिका के पास गई और दीक्षा लेकर स्वर्ग को गई। वेश्यालंपटी अंजन चोर तो उसी भव से मोक्ष जाकर जैनियों का भगवान बन गया था। मांस भक्षी मृगध्वज ने मुनि दीक्षा ले ली और वह भी कर्म काटकर परमात्मा बन गया। मनुष्य भक्षी सौदास राजा मुनि होकर उसी भव से मोक्ष गया। इत्यादि सैकडों उदाहरण मौजूद हैं। जिनसे सिद्ध होता है कि जैन धर्म पतित पावन है। यह पापियों को परमात्मा बना देने वाला है और सबसे अधिक उदार है।

जैन शास्त्रों में धर्मधारण करने का ठेका अमुक वर्ण या जाति को नहीं दिया गया है किन्तु मन वचन काय से सभी प्राणी धर्म धारण करने के अधिकारी बताये गये हैं। यथा—

"मनोवाक्कायधर्माय मताः सर्वेऽपि जन्तवः"

—श्री सोमदेवसूरिः।

ऐसी ऐसी आज्ञायें, प्रमाण और उपदेश जैन शास्त्रों में भरे पड़े हैं; फिर भी संकुचित दृष्टि वाले जाति मद में मत्त होकर इन बातों की परवाह न करके अपने को ही सर्वोच्च समझ कर दूसरों के कल्याण में जबरदस्त बाधा डाला करते हैं। ऐसे व्यक्ति जैन धर्म की उदारता को नष्ट करके स्वयं तो पाप बन्ध करते ही हैं साथ ही पतितों के उद्धार में, अवनतों की उन्नति में और पदच्युतों के उत्थान में बाधक होकर घोर अत्याचार करते हैं।

उनको मात्र भय इतना ही रहता है कि यदि नीच कहलाने वाला व्यक्ति भी जैनधर्म धारण कर लेगा तो फिर हम में और उसमें क्या भेद रहेगा! मगर उन्हें इतना ज्ञान नहीं है कि भेद

होना ही चाहिये इसकी क्या जरूरत है ? जिस जाति को आप नीच समझते हैं उसमें क्या सभी लोग पापी, अन्यायी, अत्याचारी या दुराचारी होते हैं ? अथवा जिसे आप उच्च समझ बैठे हैं उस जाति में क्या सभी लोग धर्मात्मा और सदाचारी के अवतार होते हैं ? यदि ऐसा नहीं है तो फिर आपको किसी वर्ण को ऊंच या नीच कहने का क्या अधिकार है ?

हां, यदि भेद व्यवस्था करना ही हो तो जो दुराचारी है उसे नीच और जो सदाचारी है उसे ऊंच कहना चाहिये। श्रीरविषेणाचार्य ने इसी बात को पद्मपुराण में इस प्रकार लिखा है कि—

चातुर्वर्ण्यं यथान्यच्च चाण्डालादिविशेषणं ।
सर्वमाचारभेदेन प्रसिद्धं भुवने गतम् ॥

अर्थात्—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या चाण्डालादिक का तमाम विभाग आचरण के भेद से ही लोक में प्रसिद्ध हुआ है। इसी बात का समर्थन और भी स्पष्ट शब्दों में आचार्य श्री अमितगति महाराज ने इस प्रकार किया है कि—

आचारमात्रभेदेन जातीनां भेदकल्पनम् ।
न जातिर्ब्राह्मणीयास्ति नियता क्वापि तात्विकी ॥
गुणैः संपद्यते जातिर्गुणध्वंसैर्विपद्यते ॥

अर्थात्—शुभ और अशुभ आचरण के भेद से ही जातियों में भेद की कल्पना की गई है, लेकिन ब्राह्मणादिक जाति कोई कहीं पर निश्चित, वास्तविक या स्थाई नहीं है। कारण कि गुणों के होने से ही उच्च जाति होती है और गुणों के नाश होने से उस जाति का भी नाश होजाता है।

पाठको ! इससे अधिक स्पष्ट, सुन्दर तथा उदार कथन और

क्या हो सकता है? अमितगति आचार्य ने उक्त कथन में तो जातियों को कपूर की तरह उड़ा दिया है। तथा यह स्पष्ट घोषित किया है कि जातियाँ काल्पनिक हैं-वास्तविक नहीं! उनका विभाग शुभ और अशुभ आचरण पर आधार रखता है न कि जन्म पर। तथा कोई भी जाति स्थायी नहीं है। यदि कोई गुणी है तो उसकी जाति उच्च है और यदि कोई दुर्गुणी है तो उसकी जाति नष्ट होकर नीच हो जाती है। इससे सिद्ध है कि नीच से नीच जाति में उत्पन्न हुआ व्यक्ति शुद्ध होकर जैन धर्म धारण कर सकता है और वह उतना ही पवित्र हो सकता है जितना कि जन्म से धर्म का ठेकेदार मानेजाने वाला एक जैन होता है। प्रत्येक व्यक्ति जैनी बन कर आत्मकल्याण कर सकता है। जब कि अन्य धर्मों में जाति वर्ण या समूह विशेष का पक्षपात है तब जैनधर्म इससे बिलकुल ही अछूता है। यहां पर किसी जाति विशेष के प्रति राग द्वेष नहीं है, किन्तु मात्र आचरण पर ही दृष्टि रक्खी गई है। जो आज ऊँचा है वही अनार्यों के आचरण करनेसे नीच भी बन जाता है। यथा—

"अनार्यमाचरन् किंचिज्जायते नीचगोचरः"

—रविषेणाचार्य।

जैन समाज का कर्तव्य है कि वह इन आचार्य वाक्यों पर विचार करे, जैन धर्म की उदारता को समझे और दूसरों को निःसंकोच जैन धर्म में दीक्षित करके अपने समान बनाले। कोई भी व्यक्ति जब पतित पावन जैन धर्म को धारण करले तब उसको तमाम धार्मिक एवं सामाजिक अधिकार देना चाहिये और उसे अपने भाई से कम नहीं समझना चाहिये। यथा—

विप्रक्षत्रियविट्शूद्राः प्रोक्ताः क्रियाविशेषतः।
जैनधर्मे पराः शक्तास्ते सर्वे बांधवोपमाः ॥

अर्थात्—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तो आचरण के भेद से कल्पित किये गये हैं। किन्तु जब वे जैन धर्म धारण कर लेते हैं तब सभी को अपने भाई के समान ही समझना चाहिये।

इसीसे मालूम होगा कि जैनधर्म कितना उदार है और उसमें आते ही प्रत्येक व्यक्ति के साथ किस प्रकार से प्रेम व्यवहार करने का उपदेश दिया गया है। किन्तु जैनधर्म की इस महान् उदारता को जानते हुये भी जिनकी दुर्बुद्धि में जाति मद का विष भरा हुआ है उनसे क्या कहा जाय ? अन्यथा जैनधर्म तो इतना उदार है कि कोई भी मनुष्य जैन होकर तमाम धार्मिक एवं सामाजिक अधिकारों को प्राप्त कर सकता है।

वर्ण परिवर्तन।

कुछ लोगोंकी ऐसी धारणा है कि जाति भले बदल जाय मगर वर्ण परिवर्तन नहीं हो सकता है, किन्तु उनकी यह भूल है कारण कि वर्ण परिवर्तन हुये बिना वर्णकी उत्पत्ति एव उसकी व्यवस्था भी नहीं हो सकती थी। जिस ब्राह्मण वर्ण को सर्वोच्च माना गया है उसकी उत्पत्ति पर तनिक विचार करिये तो मालूम होगा कि वह तीनों वर्णों के व्यक्तियों में से उत्पन्न हुआ है। आदिपुराण में लिखा है कि जब भरत राजा ने ब्राह्मण वर्ण स्थापित करने का विचार किया तब राजाओं को आज्ञा दी थी कि:—

सदाचारैर्निजैरिष्टैरनुजीविभिरन्विताः ।
अद्यास्मदुत्सवे यूयमायातेति पृथक् पृथक् ॥ पर्व ३८-१० ॥

अर्थात्—आप लोग अपने सदाचारी इष्ट मित्रों सहित तथा नौकर चाकरों को लेकर आज हमारे उत्सव में आओ। इस प्रकार भरत चक्रवर्तीने राजा प्रजा और नौकर चाकरों को बुलाया था, उन

में क्षत्री वैश्य और शूद्र सभी वर्ण के लोग थे। उनमें से जो लोग हरे अंकुरों को मर्दन करते हुये महल में पहुंच गये उन्हें तो चक्रवर्ती ने निकाल दिया और जो लोग हरे घास को मर्दन न करके बाहर ही खड़े रहे या लौट कर वापिस जाने लगे उन्हें ब्राह्मण बना दिया। इस प्रकार तीन वर्णों में से विवेकी और दयालु लोगों को ब्राह्मण वर्ण में स्थापित किया गया।

अब यहां विचारणीय बात यह है कि जब शूद्रों में से भी ब्राह्मण बनाये गये, वैश्यों में से भी बनाये गये और क्षत्रियों में से भी ब्राह्मण तैयार किये गये तब वर्ण अपरिवर्तनीय कैसे होसकता है? दूसरी बात यह है कि तीन वर्णों में से छांट कर एक चौथा वर्ण तो पुरुषों का तैयार होगया, मगर उन नये ब्राह्मणों की स्त्रियां कैसे ब्राह्मण हुई होंगी? कारण कि वे तो महाराजा भरत द्वारा आमंत्रित की नहीं गई थीं क्योंकि उसमें तो राजा लोग और उनके नौकर चाकर आदि ही आये थे। उनमें सब पुरुष ही थे। यह बात इस कथन से और भी पुष्ट हो जाती है कि उन सब ब्राह्मणों को यज्ञोपवीत पहनाया गया था। यथा—

तेषां कृतानि चिह्नानि सूत्रैः पद्माह्वयान्निधेः।
उपात्तैर्ब्रह्मसूत्राह्वैरेकाद्येकादशान्तकैः ॥पर्व ३८-२१॥

अर्थात्- पद्म नामक निधि से ब्रह्म सूत्र लेकर एक से ग्यारह तक (प्रतिमानुसार) उनके चिन्ह किये। अर्थात् उन्हें यज्ञोपवीत पहनाया।

यह बात तो सिद्ध है कि यज्ञोपवीत पुरुषों को ही पहनाया जाता है। तब उन ब्राह्मणों के लिये स्त्रियां कहां से आई होंगी? कहना होगा कि वही पूर्व की पत्नियां जो क्षत्रिय वैश्य या शूद्रा होंगी ब्राह्मणी बना ली गई होंगी। तब उनका भी वर्ण परिवर्तित

होजाना निश्चत है। शास्त्रों में भी वर्ण लाभ करनेवाले को अपनी पूर्वपत्नी के साथ पुनर्विवाह करनेका विधान पाया जाता है। यथा–

"पुनर्विवाहसंस्कारः पूर्वः सर्वोऽस्य संमतः"

आदिपुराण पर्व ३९-६० ॥

इतना ही नहीं किन्तु पर्व ३९ श्लोक ६१ से ७० तक के कथन से स्पष्ट मालूम होता है कि जैनी ब्राह्मणों को अन्य मिथ्यादृष्टियों के साथ विवाह संबंध करना पड़ता था, बाद में वह ब्राह्मण वर्ण में ही मिलजाते थे। इस प्रकार वर्णों का परिवर्तित होना स्वाभाविक सा होजाता है। अतः वर्ण कोई स्थाई वस्तु नहीं है यह बात सिद्ध हो जाती है। आदिपुराण में वर्ण परिवर्तन के विषय में अक्षत्रियों को क्षत्रिय होने बाबत इस प्रकार लिखा है कि—

"अक्षत्रियाश्च वृत्तस्थाः क्षत्रिया एव दीक्षिताः"।

इस प्रकार वर्ण परिवर्तन की उदारता बतला कर जैनधर्म ने अपना मार्ग बहुत ही सरल एवं सर्व कल्याणकारी करदिया है। यदि इसी उदार एवं धार्मिक मार्ग का अवलम्बन किया जाय तो जैन समाज की बहुत कुछ उन्नति हो सकती है और अनेक मनुष्य जैन बनकर अपना कल्याण कर सकते हैं। किसी वर्ण या जाति को स्थाई या गतानुगतिक मान लेना जैनधर्म की उदारता का खून करना है। यहाँ तो कुलाचार को छोड़नेसे कुल भी नष्ट हो जाता है। यथा—

कुलावधिः कुलाचाररक्षणं स्यात् द्विजन्मनः।
तस्मिन्न सत्यसौ नष्टक्रियोऽन्यकुलतां व्रजेत् ॥१८१॥

—आदिपुराण पर्व ४० ॥

अर्थ—ब्राह्मणों को अपने कुल की मर्यादा और कुल के

आचारों की रक्षा करना चाहिये। यदि कुलाचार-विचारों की रक्षा नहीं की जाय तो वह व्यक्ति अपने कुल से नष्ट होकर दूसरे कुल वाला हो जायगा।

तात्पर्य यह है कि जाति, कुल, वर्ण आदि सब क्रियाओं पर निर्भर हैं। इनके बिगड़ने सुधरनेपर इनका परिवर्तन होजाता है।

गोत्र परिवर्तन।

दुःख तो इस बात का है कि आगम और शास्त्रों की दुहाई देने वाले कितने ही लोग वर्ण को तो अपरिवर्तनीय मानते ही हैं और साथही गोत्रकी कल्पनाको भी स्थाई एवं जन्मगत मानते हैं किन्तु जैन शास्त्रों ने वर्ण और गोत्र को परिवर्तन होने वाला बता कर गुणों की प्रतिष्ठा की है तथा अपनी उदारताका द्वार प्राणी मात्र के लिये खुला करदिया है। दूसरी बात यह है कि गोत्र कर्म किसी के अधिकारों में बाधक नहीं हो सकता है। इस संबंध में यहाँ कुछ विशेष विचार करने की जरूरत है।

सिद्धान्त शास्त्रों में किसी कर्म प्रकृति का अन्य प्रकृति रूप होने को संक्रमण कहा है। उसके ५ भेद होते हैं—उद्वेलन, विध्यात, अधः प्रवृत्त, गुण और सर्व संक्रमण। इनमें से नीच गोत्र के दो संक्रमण हो सकते हैं। यथा—

सत्तण्हं गुणसंकममधापवत्तो य दुक्खमसुहगदी।
संहदि संठाणदसं णीचापुण्ण थिरछक्कं च ॥४२२॥
वीसण्हं विज्झादं अधापवत्तो गुणो य मिच्छत्ते॥४२३॥कर्मकांड

असातावेदनीय, अशुभगति, ५ संस्थान, ५ संहनन, नीच गोत्र अपर्याप्त, अस्थिरादि ६ इन २० प्रकृतियों के विध्यात, अधःप्रवृत्त, और गुण संक्रमण होते हैं। अतः जिस प्रकार असाता वेदनीय

का साताके रूपमें संक्रमण (परिवर्तन) हो सकता है उसी प्रकार से नीचगोत्र का ऊँच गोत्र के रूप में भी परिवर्तन (संक्रमण) होना सिद्धान्त शास्त्र से सिद्ध है। अतः किसी को जन्म से मरने तक नीचगोत्री ही मानना दयनीय अज्ञान है। हमारे सिद्धान्त शास्त्र पुकार २ कर कहते हैं कि कोई भी नीच से नीच या अधम से अधम व्यक्ति ऊंच पद पर पहुंच सकता है और वह पावन बन जाता है। यह बात तो सभी जानते हैं कि जो आज लोकदृष्टि में नीच था वही कल लोकमान्य, प्रतिष्ठित एवं महान होजाता है। भगवान अकलंक देव ने राजवार्तिक में ऊंच नीच गोत्र की इस प्रकार व्याख्या की है—

यस्योदयात् लोकपूजितेषु कुलेषु जन्म तदुच्चैर्गोत्रम् ॥
गर्हितेषु यत्कृतं तन्नीचैर्गोत्रम् ॥
गर्हितेषु दरिद्राऽप्रतिज्ञातदुःखाः कुलेषु यत्कृतं प्राणिनां जन्म तन्नीचैर्गोत्रं प्रत्येतव्यम् ॥

ऊंच नीच गोत्रकी इस व्याख्या से मालूम होता है कि जो लोकपूजित-प्रतिष्ठित कुलों में जन्म लेते हैं वे उच्चगोत्री हैं और जो गर्हित अर्थात दुखी दरिद्री कुल में उत्पन्न होते हैं वे नीच गोत्री हैं। यहां पर किसी भी वर्ण की अपेक्षा नहीं रखी गई है। ब्राह्मण होकर भी यदि वह निद्य एवं दीन दुखी कुल में है तो नीच गोत्र वाला है और यदि शूद्र होकर भी राजकुल में उत्पन्न हुआ है अथवा अपने शुभ कृत्यों से प्रतिष्ठित है तो वह उच्च गोत्र वाला है।

वर्ण के साथ गोत्र का कोई भी संबंध नहीं है। कारण कि गोत्रकर्म की व्यवस्था तो प्राणीमात्र में सर्वत्र है, किन्तु वर्ण-व्यवस्था तो भारतवर्ष में ही पाई जाती है। वर्णव्यवस्था मनुष्यों

की योग्यतानुसार श्रेणी विभाग है जब कि गोत्र का आधार कर्म पर है। अतः गोत्रकर्म कुल की अथवा व्यक्ति की प्रतिष्ठा अथवा अप्रतिष्ठा के अनुसार उच्च और नीच गोत्री होसकता है। इसप्रकार गोत्र कर्म की शास्त्रीय व्याख्या सिद्ध होने पर जैन धर्मकी उदारता स्पष्ट मालूम होजाती है। ऐसा होने पर ही जैन धर्म पतित पावन या दीनोद्धारक सिद्ध होता है।

पतितों का उद्धार।

जैन धर्म की उदारता पर ज्यों २ गहरा विचार किया जाता है त्यों त्यों उसके प्रति श्रद्धा बढ़ती जाती है। जैनधर्म ने महान पातकियों को पवित्र किया है, दुराचारियों को सन्मार्ग पर लगाया है, दीनों को उन्नत किया है और पतित का उद्धार करके अपना जगद्बन्धुत्व सिद्ध किया है। यह बात इतने मात्रसे सिद्ध होजाती है कि जैनधर्म में वर्ण और गोत्र को कोई स्थाई, अटल या जन्मगत स्थान नहीं है। जिन्हें जातिका कोई अभिमान है उनके लिये जैन ग्रंथकारों ने इस प्रकार स्पष्ट शब्दों में लिखकर उस जाति अभिमान को चूर चूर कर दिया है कि—

न विप्राविप्रयोरस्ति सर्वथा शुद्धशीलता।
कालेननादिना गोत्रे स्खलनं क न जायते॥
संयमो नियमः शीलं तपो दानं दमो दया।
विद्यन्ते तात्विका यस्यां सा जातिर्महती मता॥

अर्थात्—ब्राह्मण और अब्राह्मण की सर्वथा शुद्धि का दावा नहीं किया जासकता है, कारण कि इस अनादि काल में न जाने किसके कुल या गोत्र में कब पतन होगया होगा! इस लिये वास्तव में उच्च जाति तो वही है जिसमें संयम, नियम, शील, तप, दान,

दमन और दया पाई जाती हो।

इसी प्रकार और भी अनेक ग्रंथों में वर्ण और जाति कल्पना की धज्जी उडाई गई है। प्रमेय कमल मार्तण्ड में तो इतनी खूबी से जाति कल्पना का खण्डन किया गया है कि अच्छों अच्छों की बोलती बन्द होजाती है। इससे सिद्ध होता है कि जैनधर्ममें जाति की अपेक्षा गुणों के लिये विशेष स्थान है। महा नीच कहा जाने वाला व्यक्ति अपने गुणों से उच्च हो जाता है, भयंकर दुराचारी प्रायश्चित्त लेकर पवित्र हो जाता है और कैसा भी पतित व्यक्ति पावन बन सकता है। इस संबन्ध में अनेक उदाहरण पहिले दो प्रकरणोंमें दिये गये हैं। उनके अतिरिक्त और भी प्रमाण देखिये।

स्वामी कार्तिकेय महाराज के जीवन चरित्र पर यदि दृष्टिपात किया जावे तो मालूम होगा कि एक व्यभिचारजात व्यक्ति भी किस प्रकार से परम पूज्य और जैनियों का गुरू हो सकता है। उस कथा का भाव यह है कि—अग्नि नामक राजा ने अपनी कृत्तिका नामक पुत्री से व्यभिचार किया और उससे कार्तिकेय नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यथा—

स्वपुत्री कृत्तिका नाम्नी परिणीता स्वयं हठात्।
कैश्चिद्दिनैस्ततस्तस्यां कार्तिकेयो सुतोऽभवत्॥

इसके बाद जब व्यभिचारजात कार्तिकेय बड़ा हुआ और पिता कहो या नाना का जब यह अत्याचार ज्ञात हुआ तब विरक्त होकर एक मुनिराज के पास जाकर जैन मुनि होगया। यथा—

नत्वा मुनीन् महाभक्त्या दीक्षामादाय स्वर्गदाम्।
मुनिर्जातो जिनेन्द्रोक्तसप्ततत्वविचक्षणः॥

—आराधना कथाकोश की ६६ वीं कथा।

अर्थात्–वह कार्तिकेय भक्तिपूर्वक मुनिराज को नमस्कार करके स्वर्गदायी दीक्षा को लेकर जिनेन्द्रोक्त सप्ततत्त्वों के ज्ञाता मुनि होगये।

इस प्रकार एक व्यभिचारजात या आज कल के शब्दों में दस्सा या बिनैकावार व्यक्ति का मुनि होजाना जैन धर्म की उदारता का ज्वलन्त प्रमाण है। वह मुनि भी साधारण नहीं किन्तु उद्भट विद्वान और अनेक ग्रन्थों के रचयिता हुये हैं जिन्हें सारी जैन-समाज बड़े गौरव के साथ आज भी भक्तिपर्वक नमस्कार करतं है। मगर दुःख का विषय है कि जाति मद में मत्त होकर जैनसमाज अपने उदार धर्म को भूली हुई है और अपने हजारों भाई बहनों को अपमानित करके उन्हें विनैकावार या दस्सा बनाकर सदा के लिये मक्खी की तरह निकाल कर फैंक देती है। वर्तमान जैन समाज का कर्तव्य है कि वह स्वामी कार्तिकेय की कथा से कुछ बोधपाठ लेवे और जैनधर्म की उदारता का उपयोग करे। कभी किसी कारण से पतित हुये व्यक्ति को या उसकी सन्तानको सदा के लिये धर्म का अनधिकारी बना देना घोर पाप है।
भावी संतानको दूषित न मानकर उसी दोषी व्यक्ति को पुनः शुद्ध करलेने बाबत जिनसेनाचार्य ने इस प्रकार स्पष्ट कथन किया है–

कुतश्चित् कारणाद्यस्य कुलं संप्राप्तदूषणं।
सोऽपि राजादिसम्मत्या शोधयेत् स्वं यदा कुलम्॥ १६८
तदास्योपनयार्हत्वं पुत्रपौत्रादिसंततौ।
न निषिद्धं हि दीक्षार्हे कुले चेदस्य पूर्वजाः॥ १६९

आदि पुराण पर्व॥ ४०॥

अर्थ–यदि किसी कारण से किसी के कुलमें कोई दूषण लग जाय तो वह राजादिकी सम्मतिसे अपने कुलको जब शुद्ध करलेता

है तब उसे फिरसे यज्ञोपवीतादि लेने का अधिकार हो जाता है। यदि इसके पूर्वज दीक्षा योग्य कुल में उत्पन्न हुवे हों तो उसके पुत्र पौत्रादि सन्तानको यज्ञोपवीतादि लेनेका कहीं भी निषेध नहीं है।

तात्पर्य यह है कि किसी की भी सन्तान दूषित नहीं कही जा सकती, इतना ही नहीं किन्तु प्रत्येक दूषित व्यक्ति शुद्ध होकर दीक्षा योग्य होजाता है।

कुछ समय पूर्व इटावा में दिगम्बर मुनि **श्री सूर्यसागर जी महाराज** ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि—"जीव मात्रको जिनेन्द्र भगवान की पूजा भक्ति करने का अधिकार है। जब कि मेंढक जैसे तिर्यंच पूजा कर सकते हैं तब मनुष्यों की तो बात ही क्या है! याद रक्खो कि धर्म किसी की बपौती जायदाद नहीं है. जैनधर्म तो प्राणी मात्र का धर्म है, पतित पावन है। वीतराग भगवान पूर्ण पवित्र होते हैं, कोई त्रिकाल में भी उन्हें अपवित्र नहीं बना सकता। कैसा भी कोई पापी या अपराधी हो उसे कड़ी से कड़ी सजा दो परन्तु धर्मस्थान का द्वार बन्द मत करो। यदि धर्मस्थान ही बंद होगया तो उसका उद्धार कैसे होगा? ऐसे परम पवित्र-पतित पावन धर्म को पाकर तुम लोगोंने उसकी कैसी दुर्गति करडाली है शास्त्रों में तो पतितों को पावन करनेवाले अनेक उदाहरण मिलते हैं, फिर भी पता नहीं कि जैनधर्म के ज्ञाता बनने वाले कुछ जैन विद्वान इसका विरोध क्यों करते हैं? परम पवित्र, पतित पावन और उदार जैनधर्म के विद्वान संकीर्णता का समर्थन करें यह बड़े ही आश्चर्य की बात है। कहां तो हमारा धर्म पतितों को पावन करने वाला है और कहां आज लोग पतितों के संसर्ग से धर्म को भी पतित हुआ मानने लगे हैं। यह बड़े खेद का विषय है!"

मुनि श्री सूर्यसागर जी महाराज का यह वक्तव्य जैनधर्म की उदारता और वर्तमान जैनों की संकुचित मनोवृत्ति को स्पष्ट सूचित करता है। लोगों ने स्वार्थ, कषाय, अज्ञान एवं दुराग्रह के बशीभूत होकर उदार जैन मार्ग को कंटकाकीर्ण, संकुचित एवं भ्रम पूर्ण बना डाला है। अन्यथा यहाँ तो महा पापियों का उसी भवमें उद्धार होगया है। देखिये एक धीमर(मच्छीमार) की लड़की उसी भव में क्षुल्लिका होकर स्वर्ग गई थी। यथा-

ततः समाधिगुप्तेन मुनीन्द्रेण प्रजल्पितं ।
धर्ममाकर्ण्य जैनेन्द्रं सुरेन्द्राद्यै समर्चितम् ॥ २४ ॥
संजाता क्षुल्लिका तत्र तपः कृत्वा स्वशक्तितः ।
मृत्वा स्वर्गं समासाद्य तस्मादागत्य भूतले ॥ २५ ॥

आराधना कथा कोश कथा ४५ ॥

अर्थात् मुनिश्री समाधि गुप्त के द्वारा निरूपित तथा देवों से पूज्य जिनधर्मका श्रवण करके 'काणा' नामकी धीमर (मच्छीमार) की लड़की क्षुल्लिका हो गई और यथा शक्ति तप कर के स्वर्ग को गई।

जहां मांस भक्षी शूद्र कन्या इस प्रकार से पवित्र होकर जैनों की पूज्य हो जाती है, वहां उस धर्म की उदारता के सम्बन्ध में और क्या कहा जाय? एक नहीं, ऐसे पतित पावन अनेक व्यक्तियों का चरित्र जैन शास्त्रोंमें भरा पड़ा है। उनसे उदारता की शिक्षा ग्रहण करना जैनों का कर्तव्य है।

यह खेद की बात है कि जिन बातों से हमें परहेज करना चाहिये उनकी ओर हमारा तनिक भी ध्यान नहीं है और जिनके विषय में धर्म शास्त्र एवं लोक शास्त्र खुली आज्ञा देते हैं या जिनके अनेक उदाहरण पूर्वाचार्य ग्रन्थों में लिख गये हैं उन पर ध्यान

नहीं दिया जाता है । प्रत्युत विरोध तक किया जाता है । क्या यह कम दुर्भाग्य की बात है ? हमारे धर्म शास्त्रों ने आचार शुद्ध होने वाले प्रत्येक वर्ण या जाति के व्यक्ति को शुद्ध माना है । यथा-

शूद्रोप्युपस्कराचारवपुःशुद्धयास्तु तादृशः ।
जात्या हीनोऽपि कालादिलब्धौ ह्यात्मास्ति धर्म भाक् ॥

सागर धर्मामृत २-२२

अर्थात्— जो शूद्र भी है यदि उसका आसन वस्त्र आचार और शरीर शुद्ध है तो वह ब्राह्मणादि के समान है । तथा जाति से हीन (नीच) होकर भी कालादि लब्धि पाकर वह धर्मात्मा हो जाता है ।

यह कैसा स्पष्ट एवं उदारता मय कथन है ! एक महा शूद्र एवं नीच जाति का व्यक्ति अपने आचार विचार एवं रहन सहन को पवित्र करके ब्राह्मण के समान बन जाता है । ऐसी उदारता और कहां मिलेगी ? जैन धर्म तो गुणों की उपासना करना बतलाता है, उसे जन्म जात शरीर की कोई चिन्ता नहीं है । यथा-

"व्रत स्थमपि चाण्डालं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥"

रविषेणाचार्य ।

अर्थात— चाण्डाल भी व्रत धारण करके ब्राह्मण हो सकता है । कहिये इतनी महान उदारता और कहां हो सकती है ? सच बात तो यह है कि—

जहां वर्ण मे सदाचार पर अधिक दिया जाता हो जोर ।
तर जाते हों निमिष मात्र में यमपालादिक अंजन चोर ॥
जहां जाति का गर्व न होवे और न हो थोथा अभिमान ।
वहीं धर्म है मनुजमात्र को हो जिसमें अधिकार समान ॥

मनुष्य जाति को एक मान कर उसके प्रत्येक व्यक्ति को समान

अधिकार देना ही धर्म की उदारता है। जो लोग मनुष्यों में भेद देखते हैं उनके लिये आचार्य लिखते हैं—

"नास्ति जाति कृतो भेदो मनुष्याणां गवाश्ववत्"

गुणभद्राचार्य।

अर्थात्— जिस प्रकार पशुओं में या तिर्यंचों में गाय और घोड़े आदि का भेद होता है उस प्रकार मनुष्यों में कोई जाति कृत भेद नहीं है। कारण कि "मनुष्य जातिरेकैव" मनुष्य जाति तो एक ही है। फिर भी जो लोग इन आचार्य वाक्यों की अवहेलना करके मनुष्यों को सैकड़ों नहीं हजारों जातियों में विभक्त करके उन्हें नीच ऊँच मान रहे हैं उनको क्या कहा जाय?

याद रहे कि आगम के साथ ही साथ जमाना भी इस बात को बतला रहा है कि मनुष्य मात्र से बंधुत्वका नाता जोड़ो, उनसे प्रेम करो और कुमार्ग पर जाते हुये भाइयों का सन्मार्ग बताओ तथा उन्हें शुद्ध करके अपने हृदय से लगालो। यही मनुष्य का कर्तव्य है यही जीवन का उत्तम कार्य है और यही धर्म का प्रधान अंग है। भला मनुष्यों के उद्धार समान और दूसरा धर्म क्या होसकता है? जो मनुष्यों से घृणा करता है उसने न तो धर्म को पहिचाना है और न मनुष्यता को?

वास्तव में जैन धर्म तो इतना उदार है कि जिसे कहीं भी शरण न मिले उसके लिये भी जैन धर्म का फाटक हमेशा खुला रहता है। जब एक मनुष्य दुराचारी होने से जाति वहिष्कृत और पतित किया जा सकता है तथा अधर्मात्मा करार दिया जा सकता है तब यह बात स्वयं सिद्ध है कि वही अथवा अन्य व्यक्ति सदाचारी होने से पुनः जाति में आ सकता है, पावन हो सकता है और धर्मात्मा बन सकता है। समझ में नहीं आता कि ऐसी

सीधी सादी एवं युक्ति संगत बात क्यों समझ में नहीं आती ?

यदि आज कल के जैनियों की भांति महावीर स्वामी की भी संकुचित दृष्टि होती तो वे महा पापी, अत्याचारी, मांस लोलुपी, नर हत्या करने वाले निर्दयी मनुष्यों को इस पतित पावन जैनधर्म की शरण में कैसे आने देते ? तथा उन्हें उपदेश ही क्यों देते ? उनका हृदय तो विशाल था, वे सच्चे पतित पावन प्रभु थे, उनमें विश्व प्रेम था इसी लिये वे अपने शासन में सबको शरण देते थे। मगर समझ में नहीं आता कि महावीर स्वामी के अनुयायी आज उस उदार बुद्धि से क्यों काम नहीं लेते ?

भगवान् महावीर स्वामी का उपदेश प्रायः प्राकृत भाषा में पाया जाता है। इसका कारण यही है कि उस जमाने में नीच से नीच वर्ग की भी आम भाषा प्राकृत थी। उन सब को उपदेश देने के लिये ही साधारण बोलचाल की भाषा में हमारे धर्म ग्रन्थों की रचना हुई थी।

जो पतित पावन नहीं है वह धर्म नहीं है, जिसका उपदेश प्राणीमात्र के लिये नहीं है वह देव नहीं है, जिसका कथन सब के लिये नहीं है वह शास्त्र नहीं है, जो नीचों से घृणा करता है और उन्हें कल्याण मार्ग पर नहीं लगा सकता वह गुरु नहीं है। जैन धर्म में यह उदारता पाई जाती है इसी लिये वह सर्व श्रेष्ठ है। वर्तमान में जैनधर्म की इस उदारता का प्रत्यक्ष रूप में अमल कर दिखाने की जरूरत है।

शास्त्रीय दण्ड विधान।

किसी भी धर्म की उदारता का पता उस के प्रायश्चित्त या दण्ड विधान से भी लग सकता है। जैन शास्त्रों में दण्ड विधान बहुत ही उदार दृष्टि से वर्णित किया गया है। यह बात दूसरी है

कि हमारी समाज ने इस ओर बहुत दुर्लक्ष्य किया है; इसी लिये उसने हानि भी बहुत उठाई है। सभ्य संसार इस बात को पुकार पुकार कर कहता है कि अगर कोई अंधा पुरुष ऐसे मार्ग पर जा रहा हो कि जिस पर चल कर उसका आगे पतन हो जायगा, भयानक कुये में जा गिरेगा और लापता हो जायगा तो एक दयालु समझदार एवं विवेकी व्यक्ति का कर्तव्य होना चाहिये कि वह उस अंधे का हाथ पकड़ कर ठीक मार्ग पर लगादे, उसको भयानक गर्त से उबार ले और कदाचित वह उस महागर्त में पड़ भी गया हो तो एक सहृदयी व्यक्ति का कर्तव्य है कि जब तक उस अंधे की श्वास चल रही है, जब तक वह अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा है तब तक भी उसे उभार कर उसकी रक्षा करले। बस, यही परम दया धर्म है, और यही एक मानवीय कर्तव्य है।

इसी प्रकार जब हमें यह अभिमान है कि हमारा जैनधर्म परम उदार है, सार्वधर्म है, परमोद्धारक मानवीय धर्म है तथा यही सच्ची दृष्टि से देखने वाला धर्म है तब हमारा कर्तव्य होना चाहिये कि जो कुमार्गरत हो रहे हैं, जो सत्यमार्ग को छोड़ बैठे हैं, तथा जो मिथ्यात्व, अन्याय और अभक्ष्य को सेवन करते हैं उन्हें उपदेश देकर सुमार्ग पर लगावें। जिस धर्म का हमें अभिमान है उस से दूसरों को भी लाभ उठाने देवें।

लेकिन जिनका यह भ्रम है कि अन्याय सेवन करने वाला, *मांस मदिरा सेवी, मिथ्यात्वी एवं विधर्मी* को अपना धर्म कैसे बताया जावे, उन्हें कैसे साधर्मी बनाया जावे, उनकी यह भारी भूल है। अरे! धर्म तो मिथ्यात्व, अन्याय और पापों से छुड़ाने वाला ही होता है। यदि धर्म में यह शक्ति न हो तो पापियों का उद्धार कैसे हो सकता है? और जो अधर्मियों को धर्म पथ नहीं बतला सकता वह धर्म ही कैसे कहा जा सकता है?

दुराचारियों का दुराचार छुड़ाकर उन्हें साधर्मी बनाने से धर्म व समाज लांछित नहीं होता है, किन्तु लांछित होता है तब जब कि उसमें दुराचारी और अन्यायी लोग अनेक पाप करते हुये भी मूँछों पर ताव देवें और धर्मात्मा बने बैठे रहें। विष के खाने से मृत्यु हो जाती है लेकिन उसी विष को शुद्ध करके सेवन करने से अनेक रोग दूर हो जाते हैं। प्रत्येक विवेकी व्यक्ति का हृदय इस बात की गवाही देगा कि अन्याय, अभक्ष्य, अनाचार और मिथ्यात्व का सेवन करनेवाले जैन से वह अजैन लाख दरजे अच्छा है जो इन बातों से परे है और अपने परिणामों को सरल एवं निर्मल बनाये रखता है।

मगर खेद का विषय है कि आज हमारी समाज दूसरों को अपनावे, उन्हें धर्म मार्ग पर लावे यह तो दूर रहा, किन्तु स्वयं ही गिर कर उठना नहीं चाहती, बिगड़ कर सुधरना उसे याद नहीं है। इस समय एक कवि का वाक्य याद आ जाता है कि—

"अय कौम तुझको गिर के उभरना नहीं आता।
इक बार बिगड़ कर के सुधरना नहीं आता॥"

यदि किसी साधर्मी भाई से कोई अपराध बन जाय और वह *प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध होने को तैयार हो तो भी हमारी समाज उस* पर दया नहीं लाती। समाज के सामने वह विचारा मनुष्यों की गणना में ही नहीं रह जाता है। उसका मुसलमान और ईसाई हो जाना मंजूर, मगर फिर से शुद्ध होकर वह जैनधर्मी नहीं हो सकता, जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन नहीं कर सकता, समाज में एक साथ नहीं बैठ सकता और किसी के सामने सिर ऊँचा करके नहीं देख सकता; यह कैसी विचित्र विडंबना है!

उदारचेता पूर्वाचार्य प्रणीत प्रायश्चित्त संबंधी शास्त्रों को

देखिये तो मालूम होगा कि उनमें कैसे कैसे पापी, हिंसक, दुराचारी और हत्यारे मनुष्यों तक को दण्ड देकर पुनः स्थितिकरण करने का विधान किया गया है। इस विषय में विशेष न लिखकर मात्र दो श्लोक ही दिये जाते हैं जिनसे आप प्रायश्चित्त शास्त्रों की उदारता का अनुमान लगा सकेंगे। यथा—

साधूपासकबालस्त्रीधेनूनां घातने क्रमात् ।
यावद् द्वादशमासाः स्यात् षष्ठमर्धार्धहानियुक् ॥

—प्रायश्चित्त समुच्चय ।

अर्थात्—साधु, उपासक, बालक, स्त्री और गाय के वध (हत्या) का प्रायश्चित्त क्रमशः आधी आधी हानि सहित बारह मास तक षष्ठोपवास (वेला) है।

इसका मतलब यह है कि साधु का घात करने वाला व्यक्ति १२ माह तक एकान्तरे से उपवास करे, और इसके आगे उपासक बालक, स्त्री और गाय की हत्या में आधे आधे करे। पुनश्च—

तृणमांसात्पतत्सर्पपरिसर्पजलौकसां ।
चतुर्दशनवाद्यन्तक्षमणा निवधे छिदा ॥ प्रा० चू० ॥

अर्थात्—मृग आदि तृणचर जीवों के घात का १४ उपवास, सिंह आदि मांस भक्षियों के घात का १३ उपवास, मयूरादि पक्षियों के घात का १२ उपवास, सर्पादि के मारने का ११ उपवास, सरट आदि परिसर्पों के घातका १० उपवास और मत्स्यादि जलचर जीवों के घात का ९ उपवास प्रायश्चित बताया गया है।

इतने मात्र से मालूम हो जायगा कि जैनधर्म में उदारता है, प्रेम है, उद्धारकपना है, और कल्याणकारित्व है। एक बार गिरा हुआ व्यक्ति उठाया जा सकता है, पापी भी निष्पाप बनाया जा

सकता है और पतित को पावन किया जा सकता है ।

जैनियो ! इस उदारता पर विचार करो, तनिक २ से अपराध करनेवालों को जो धुतकार कर सदा के लिये अलहदा कर देते हो यह जुल्म करना छोड़ो और आचार्य वाक्यों को सामने रखकर अपराधी बंधुका सच्चा न्याय करो। अब कुछ उदारता की आवश्यक्ता है और प्रेम भाव की जरूरत है। कारण कि लोगों को तनिक ही धक्का लगाने पर उन से द्वेष या अप्रीति करने पर वे घबड़ा कर या उपेक्षित होकर अपने धर्म को छोड़ बैठते हैं ! और दूसरे दिन ईसाई या मुसलमान हो कर किसी गिरजाघर या मसजिद में जा कर धर्म की खोज करने लगते हैं । क्या इस ओर समाज ध्यान नहीं देगी ?

हमारी समाज का सब से बड़ा अन्याय तो यह है कि एक ही अपराध में भिन्न २ दण्ड देती है। पुरुष पापी अपने बलात्कार या छल से किसी स्त्री के साथ दुराचार कर डाले तो स्वार्थी समाज उस पुरुष से लड्डू खाकर उसे जाति में पुनः मिला भी लेती है मगर वह स्त्री किसी प्रकार का भी दण्ड देकर शुद्ध नहीं की जाती! वह विचारी अपराधिनी पंचों के सामने गिड़गिड़ाती है, प्रायश्चित्त चाहती है, कठोर से कठोर दण्ड लेने को तैयार होती है, फिर भी उसकी बात नहीं सुनी जाती, चाहे वह देखते ही देखते मुसलमान या ईसाई क्यों न हो जाय। क्या यही न्याय है, और यही धर्म की उदारता है ? यह कृत्य तो जैनधर्म की उदारता को कलंकित करने वाले हैं।

अत्याचारी दण्ड विधान ।

जैन शास्त्रों में सभी प्रकार के पापियों को प्रायश्चित्त दे कर शुद्ध कर लेने का उदारतामय विधान पाया जाता है। मगर खेद है

की वह शुद्ध सन्तान धर्म तथा जाति से च्युत होकर जैनियों का मुँह ताका करती है ! उन विचारों को इसका तनिक भी पता नहीं है कि हम धर्म और जाति च्युत क्यों हैं उनका बेटी व्यवहार बड़ी ही कठिनाई से उसी विनैकया जाति में हुआ करता है। और वे बिना देवदर्शन या पूजादि के अपना जीवन पूर्ण किया करते हैं।

जैनियो ! अपने वात्सल्य अंग को देखो, स्थितिकरण पर विचार करो, और अहिंसा धर्म की बड़ी बड़ी व्याख्याओं पर दृष्टिपात करो। अपने निरपराध भाइयों को इस प्रकार से मक्खी की भांति निकाल कर फेंक देना और उनकी सन्तान दर सन्तान को भी दोषी मानते रहना तथा उनके गिड़गिड़ाने पर और हजार मिन्नतें करने पर भी ध्यान नहीं देना, क्या यही वात्सल्य है ? क्या यही धर्म की उदारता है ? क्या यही अहिंसा का आदर्श है ?

जब कि ज्येष्ठा आर्यिका के व्यभिचार से उत्पन्न हुआ रुद्र मुनि हो जाता है, अग्नि राजा और उसकी पुत्री कृत्तिका के व्यभिचार से उत्पन्न हुआ पुत्र कार्तिकेय दिगम्बर जैन साधु हो जाता है, और व्यभिचारिणी स्त्री से उत्पन्न हुआ सुदृष्टि का जीव मुनि हो कर उसी भव से मोक्ष जाता है तब हमारी समाज के कर्णधार विचारे उन परम्परागत विनैकावार या जाति च्युत दस्सा भाइयों को अभी भी जाति में नहीं मिलाना चाहते और न उन्हें जिन मन्दिर में जाकर दर्शन पूजन करने देना चाहते हैं, यह कितना भयंकर अत्याचार है ! जैन शास्त्रों को ताक में रखकर इस प्रकार का अन्याय करना जैनत्व से सर्वथा बाहर है। अतः यदि आप वास्तव में जैन हैं और जैन शास्त्रों की आज्ञा मान्य है तो अपनी समाज में एक भी जैन भाई ऐसा नहीं रहना चाहिये जो जाति या मन्दिर से बहिष्कृत रहे। सबको यथोचित प्रायश्चित्त दे कर शुद्ध कर लेना ही जैनधर्म की सच्ची उदारता है।

उदारता के उदाहरण ।

जैनधर्म में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें जाति या वर्ण की अपेक्षा गुणों को महत्व दिया गया है। यही कारण है कि वर्ण की व्यवस्था जन्मतः न मानकर कर्म से मानी गई है। यथा—

मनुष्यजातिरेकैव जातिनामोदयोद्भवा ।
वृत्तिभेदाहिताद्भेदाच्चातुर्विध्यमिहाश्नुते ॥ पर्व ३८-४५ ॥
ब्राह्मणा व्रतसंस्कारात् क्षत्रियाः शस्त्रधारणात् ।
वणिज्योऽर्थार्जनान्न्याय्यात् शूद्रा न्यग्वृत्तिसंश्रयात् ॥

—आदिपुराण पर्व ३८-४६ ।

अर्थात्—जाति नाम कर्म के उदय से उत्पन्न हुई मनुष्य जाति एक ही है किन्तु जीविका के भेद से वह चार भागों (वर्णों) में विभक्त होगई है। व्रतों के संस्कार से ब्राह्मण, शस्त्र धारण करने से क्षत्रिय, न्यायपूर्वक द्रव्य कमाने से वैश्य और नीच वृत्ति का आश्रय करने से शूद्र कहे जाते हैं।

तथा च—

क्षत्रियाः क्षतत्राणात् वैश्या वाणिज्ययोगतः ।
शूद्राः शिल्पादि सबंधाज्जाता वर्णास्त्रयोऽप्यतः ॥

हरिवंशपुराण सर्ग ९-३९ ।

अर्थात्—दुखियों की रक्षा करने वाले क्षत्रिय, व्यापार करने वाले वैश्य और शिल्प कला से संबंध रखनेवाले शूद्र बनाये गयेथे।

इस प्रकार जैन धर्म में वर्ण विभाग करके भी गुणों की प्रतिष्ठा की गई है। और जाति या वर्ण का मद करने वालों की निन्दा की गई है तथा उन्हें दुर्गति का पात्र बताया है। आराधना कथाकोश

में लक्ष्मीमती की कथा है। उसे अपनी ब्राह्मण जाति का बहुत अभिमान था। इसी से वह दुर्गति को प्राप्त हुई। इसलिए ग्रंथकार उपदेश देते हुए लिखते हैं कि—

मानतो ब्राह्मणी जाता क्रमाद्धीवरदेहजा।
जातिगर्वो न कर्तव्यस्ततः कुत्रापि धीधनैः ॥४५-१६॥

अर्थात्—जाति गर्व के कारण एक ब्राह्मणी भी ढीमर की लड़की हुई, इसलिए विद्वानों को जातिका गर्व नहीं करना चाहिये।

इधर तो जाति का गर्व न करने का उपदेश देकर उदारता का पाठ पढ़ाया है और उधर जाति गर्व के कारण पतित होकर ढीमर के यहां उत्पन्न होने वाली लड़की का आदर्श उद्धार बता कर जैन धर्म की उदारता को और भी स्पष्ट किया है। यथा—

ततः समाधिगुप्तेन मुनीन्द्रेण प्रजल्पितम्।
धर्ममाकर्ण्य जैनेन्द्रं सुरेन्द्राद्यैः समर्चितम् ॥ २४ ॥
संजाता क्षुल्लिका तत्र तपः कृत्वा स्वशक्तितः।
मृत्वा स्वर्गं समासाद्य तस्मादागत्य भूतले ॥ २५ ॥

आराधना कथा कोश नं० ४५ ॥

अर्थात्—समाधिगुप्त मुनिराज के मुख के जैनधर्म का उपदेश सुनकर वह ढीमर (मच्छीमार) की लड़की क्षुल्लिका होगई और शान्ति पूर्वक तप करके स्वर्ग गई। इत्यादि।

इस प्रकार से एक शूद्र (ढीमर) की कन्या मुनिराज का उपदेश सुनकर जैनियों की पूज्य क्षुल्लिका हो जाती है। क्या यह जैनधर्म की कम उदारता है? ऐसे उदारता पूर्ण अनेक उदाहरण तो इसी पुस्तक के अनेक प्रकरणों में लिखे जा चुके हैं और ऐसे ही सैकड़ों उदाहरण और भी उपस्थित किए जा सकते हैं जो जैन

धर्म का मुख उज्ज्वल करने वाले हैं। लेकिन विस्तार भय से उन सब का वर्णन करना यहां अशक्त है। हां, कुछ ऐसे उदाहरणोंका सारांश यहां उपस्थित किया जाता है। आशा है कि जैन समाज इस पर गंभीरता से विचार करेगी।

१—**अग्निभूत**—मुनि ने चाण्डाल की अंधी लड़की को आर्यिका के व्रत धारण कराये। वही तीसरे भव में सुकुमाल हुई थी।

२—**पूर्णभद्र**—और मानभद्र नामक दो वैश्य पुत्रों ने एक चाण्डाल को श्रावक के व्रत ग्रहण कराये। जिससे वह चाण्डाल मर कर सोलहवें स्वर्ग में ऋद्धिधारी देव हुआ।

३—**म्लेच्छ कन्या**—जरा से भगवान नेमिनाथ के चाचा वसुदेव ने विवाह किया, जिससे जरत्कुमार हुआ। उसने मुनिदीक्षा ग्रहण की थी।

४—**महाराजा श्रेणिक**—बौद्ध थे तब शिकार खेलते थे और घोर हिंसा करते थे, मगर जब जैन हुए तब शिकार आदि त्याग कर जैनियों के महापुरुष होगये।

५—**विद्युत चोर**—चोरों का सरदार होने पर भी जम्बू स्वामी के साथ मुनि होगया और तप करके सर्वार्थ सिद्धि गया।

६—**भैंसों तक का मांस खाजाने वाला**—पापी मृगध्वज

मुनिदत्तमुनेः पार्श्वे जैनीं दीक्षां समाश्रितः।
क्षयं नीत्वा सुधीर्ध्यानात् घातिकर्मचतुष्टयम्॥
केवलज्ञानमुत्पाद्य संजातो भुवनार्चितः॥

आराधना कथा ५५वीं॥

मुनिदत्त मुनि के पास जिनदीक्षा लेकर तप द्वारा घातिया कर्मों को नाश कर जगत्पूज्य हो जैनियों का परमात्मा बन गया।

७–परस्त्री सेवीका मुनिदान—राजा सुमुख वीरक सेठ की पत्नी बनमाला पर मुग्ध होगया। और उसे दूतियों के द्वारा अपने महलों में बुला लिया तथा उसे घर नहीं जाने दिया और अपनी स्त्री बनाकर उससे प्रगाढ़ काम सेवन करने लगा। एकदिन राजा सुमुख के मकान पर महामुनि पधारे। वे सब जानने वाले विशुद्ध ज्ञानी थे, फिर भी राजा के यहां आहार लिया। राजा सुमख और बनमाला दोनों (विनैकावार या दस्साओं) ने मिलकर आहार दिया और पुण्य संचय किया। इसके बाद भी वे दोनों काम सेवन करते रहे। एक समय बिजली गिरने से वे मर कर विद्याधर विद्याधरी हुए। इन्हीं दोनों से 'हरि' नामक पुत्र हुआ जिससे 'हरिवंश' की उत्पत्ति हुई। (देखो हरिवंश पुराण सर्ग १४ श्लोक ४७ से सर्ग १५ श्लोक १३ तक)

कहाँ तो यह उदारता कि ऐसे व्यभिचारी लोग भी मुनिदान देकर पुण्य संचय कर सकें और कहां आज तनिक से लांछन से पतित किया हुआ जैन दस्सा-विनैका या जातिच्युत होकर जिनेन्द्र के दर्शनों को भी तरसता है। खेद !

८–वेश्या और वेश्या सेवीका उद्धार—हरिवंश पुराण के सर्ग २१ में चारुदत्त और बसन्तसेना का बहुत ही उदारतापूर्ण जीवन चरित्र है। उसका कुछ भाग श्लोकोंको न लिख कर उनकी संख्या सहित यहाँ दिया जाता है। चारुदत्त ने बाल्यावस्था में ही अणुव्रत लेलिये थे (२१-१२) फिर भी चारुदत्त काका के साथ बसन्तसेना वेश्या के यहाँ माता की प्रेरणा से पहुंचाया गया (२१-४०) बसन्तसेना वेश्या की माता ने चारुदत्तके हाथ में अपनी पुत्री का हाथ पकड़ा दिया (२१-५८) फिर वे दोनों मजे से संभोग करते रहे। अन्त में बसन्तसेना की माता ने चारुदत्त को घर से

बाहर निकाल दिया (२१-७३) चारुदत्त व्यापार करने चले गये। फिर वापिस आकर घर में आनन्द से रहने लगे। बसन्तसेना वेश्या भी अपना घर छोड़कर चारुदत्त के साथ रहने लगी। उसने एक आर्यिका के पास श्रावक के व्रत ग्रहण किये थे अतः चारुदत्त ने भी उसे सहर्ष अपनाया और फिर पत्नी बनाकर रखा (२१-१७६) बाद में वेश्या सेवी चारुदत्त मुनि होकर सर्वार्थसिद्धि पधारे तथा उस वेश्या को भी सद्गति मिली।

इस प्रकार एक वेश्यासेवी और वेश्या का भी जहां उद्धार हो सकता हो उस धर्म की उदारता को फिर क्या पूछना ? मजा तो यह है कि चारुदत्त उस वेश्या को फिर भी प्रेम सहित अपना कर अपने घर पर रख लेता है और समाज ने कोई विरोध नहीं किया। मगर आजकल तो स्वार्थी पुरुष समाज में ऐसे पतितों को एक तो पुनः मिलाते नहीं हैं, और यदि मिलावें भी तो पुरुष को मिलाकर विचारी स्त्री को अनाथिनी, भिखारिणी और पतिता बनाकर सदा के लिये निकाल देते हैं। क्या यह निर्दयता जैनधर्म की उदारता के सामने घोर पाप नहीं है ?

९—व्यभिचारिणी की सन्तान—हरिवंश पुराण के सर्ग २९ की एक कथा बहुत ही उदार है। उसका भाव यह है कि तपस्विनी ऋषिदत्ता के आश्रम में जाकर राजा शीलायुध ने एकान्त पाकर उससे व्यभिचार किया (३९) उसके गर्भ से ऐणी पुत्र उत्पन्न हुआ। प्रसव पीड़ा से ऋषिदत्ता मर गई और सम्यक्त के प्रभाव से नागकुमारी हुई। व्यभिचारी राजा शीलायुध दिगम्बर मुनि होकर स्वर्ग गया (५७)

ऐणीपुत्र की कन्या प्रियंगुसुन्दरी को एकान्त में पाकर वसुदेव ने उसके साथ काम क्रीड़ा की (६८) और उसे व्यभिचारजात जानकर भी अपनाया और संभोग करने के बाद सब के सामने

प्रगट विवाह किया (७०)

१०–मांसभक्षी की मुनिदीक्षा—सुधर्मा राजा को माँस भक्षण का शौक था। एक दिन मुनि चित्ररथ के उपदेश से मांस त्याग कर तीनसौ राजाओं के साथ मुनि होगया (हरि० ३३-१५२)

११–कुमारी कन्या की सन्तान—राजा पाण्डु ने कुन्ती से कुमारी अवस्था में ही संभोग किया, जिससे कर्ण उत्पन्न हुये।

"पाण्डोः कुन्त्यां समुत्पन्नः कर्णः कन्याप्रसंगतः"।
॥ हरि० ४५-३७॥

और फिर बाद में उसी से विवाह हुआ, जिससे युधिष्ठिर अर्जुन और भीम उत्पन्न होकर मोक्ष गये।

१२–चाण्डाल का उद्धार—एक चाण्डाल जैनधर्म का उपदेश सुनकर संसार से विरक्त होगया और दीनता को छोड़कर चारों प्रकार के आहारों का परित्याग करके व्रती हो गया। वही मरकर नन्दीश्वर द्वीप में देव हुआ। यथा—

निर्वेदी दीनतां त्यक्त्वा त्यक्ताहारचतुर्विधं।
मासेन श्वपचो मृत्वा भूत्वा नन्दीश्वरोऽमरः॥
॥ हरि० ४३-१५५॥

इस प्रकार एक चाण्डाल अपनी दीनता को (कि मैं नीच हूं) छोड़कर व्रती बन जाता है और देव होता है। ऐसी पतितोद्धारक उदारता और कहाँ मिलेगी?

१३–शिकारी मुनि होगया--जंगल में शिकार खेलता हुआ और मृग का वध करके आया हुआ एक राजा मुनिराज के उपदेश से खून भरे हाथों को धोकर तुरन्त मुनि होजाता है।

१४–भील के श्रावक व्रत—महावीर स्वामी का जीव जब भील था तब मुनिराज के उपदेश से श्रावक के व्रत लेलिये थे और

क्रमशः विशुद्ध होता हुआ महावीर स्वामी की पर्याय में आया। इन उदाहरणों से जैन धर्मकी उदारता का कुछ ज्ञान होसकता है। यह बात दूसरी है कि वर्तमान जैन समाज इस उदारताका उपयोग नहीं कर रही है। इसीलिए उसकी दिनोंदिन अवनति हो रही है। यदि जैन समाज पुनः अपने उदार धर्म पर विचार करे तो जैनधर्म का समस्त जगत में अद्भुत प्रभाव जम सकता है।

जैनधर्म में शूद्रों के अधिकार।

इस पुस्तक में अभी तक ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा चुके हैं जिनसे ज्ञात हुआ होगा कि घोर से घोर पापी, नीच से नीच आचरण वाले और चांडालादिक दीन हीन शूद्र भी जैनधर्म की शरण लेकर पवित्र हुये हैं। जैनधर्म में सब को पचाने की शक्ति है। जहां पर वर्ण की अपेक्षा सदाचार को विशेष महत्व दिया गया है वहां ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रादिक का पक्षपात भी कैसे हो सकता है? इसी लिऐ कहना होगा कि जैनधर्म में शूद्रों को भी वही अधिकार हैं जो ब्राह्मणादि को हो सकते हैं शूद्र जिन मन्दिर में जा सकते हैं, जिन पूजा कर सकते हैं, जिन बिम्ब का स्पर्श कर सकते हैं, उत्कृष्ट श्रावक तथा मुनि के व्रत ले सकते हैं। नीचे लिखी कुछ कथाओं से यह बात विशेष स्पष्ट हो जाती है। इन बातों से व्यर्थ ही न भड़क कर इन शास्त्रीय प्रमाणों पर विचार करिये।

श्रेणिक चरित्र में तीन शूद्र कन्याओं का विस्तार से वर्णन है उनके घर में मुर्गियां पाली जाती थीं। वे तीनों नीच कुल में उत्पन्न हुई थीं और उनका रहन सहन, आकृति आदि बहुत ही खराब थी। एक वार वे मुनिराज के पास पहुंची और उनके उपदेश से प्रभावित हो अपने उद्धार का मार्ग पूछा। मुनिराज ने उन्हें लब्धि

विधान व्रत करने को कहा। इस व्रत में भगवान जिनेन्द्र की प्रतिमा का प्रक्षाल-पूजादि भी करनी पड़ती है। मुनि और श्रावकों को दान देना पड़ता है तथा अनेक धार्मिक विधियां (उपवासादि) करना पड़ती हैं। उन कन्याओं ने यह सब शुद्ध अन्तःकरण से स्वीकार किया। यथा—

तिस्रोपि तद्व्रतं चक्रुरुद्यापनक्रियायुतम्।
मुनिराजोपदेशेन श्रावकाणां सहायतः॥ ५७॥
श्रावकव्रतसंयुक्ता बभूवुस्ताश्च कन्यकाः।
क्षमादिव्रतसंकीर्णाः शीलांगपरिभूषिताः॥५८॥
कियत्काले गते कन्या आसाद्य जिनमन्दिरम्।
सपर्यां महता चक्रुर्मनोवाक्कायशुद्धितः॥ ५९॥
ततः आयुक्षये कन्याः कृत्वा समाधिपंचताम्।
अर्हद्बीजाक्षरं स्मृत्वा गुरुपादं प्रणम्य च॥ ६०॥
पंचमे दिवि संजाता महादेवा स्फुरत्प्रभाः।
संछित्वा रमणीलिंगं सानंदयौवनान्विताः॥ ६१॥

—गौतमचरित्र तीसरा अधिकार।

अर्थात्—उन तीनों शूद्र कन्याओं ने मुनिराज के उपदेशानुसार श्रावकों की सहायता से उद्यापन क्रिया सहित लब्धिविधान व्रत किया। तथा उन कन्याओं ने श्रावक के व्रत धारण करके क्षमादि दश धर्म और शीलव्रत धारण किया। कुछ समय बाद उन शूद्र कन्याओं ने जिन मन्दिर में जाकर मन वचन काय की शुद्धतापूर्वक जिनेन्द्र भगवान की बड़ी पूजा की। फिर आयु पूर्ण होने पर वे कन्यायें समाधिमरण धारण करके अर्हन्त देव के बीजाक्षरों को स्मरण करती हुई और मुनिराज के चरणों को नमस्कार करके स्त्रीपर्याय छेद कर पांचवें स्वर्ग में देव हुईं।

इस कथा भाग से जैनधर्म की उदारता अधिक स्पष्ट हो जाती है। जहाँ आज के दुराग्रही लोग स्त्री मात्र को पूजा प्रज्ञाल का अनधिकारी बतलाते हैं वहाँ मुर्गा मुर्गियों को पालने वाली शूद्र जाति की कन्यायें जिन मन्दिर में जाकर महा पूजा करती हैं और अपना भव सुधार कर देव हो जाती हैं। शूद्रों की कन्याओं का समाधिमरण धारण करना, बीजाक्षरों का जाप करना आदि भी जैनधर्म की उदारता को उद्घोषित करता है।

इसके अतिरिक्त एक ग्वाला के द्वारा जिन पूजा का विधान बताने वाली भी ११३ वीं कथा आराधना कथा कोश में है। उस का भाव इस प्रकार है—

धनदत्त नामक एक ग्वाला को गायें चराते समय एक तालाब में सुन्दर कमल मिल गया। ग्वाला ने जिनमन्दिर में जाकर राजा के द्वारा सुगुप्त मुनि से पूछा कि सर्व श्रेष्ठ व्यक्ति को यह कमल चढ़ाना है। आप बताइये कि संसार में सर्व श्रेष्ठ कौन है? मुनि-राज ने जिन भगवान को सर्व श्रेष्ठ बतलाया, तदनुसार धनदत्त ग्वाला राजा और नागरिकों के साथ जिन मन्दिर में गया और जिनेन्द्र भगवान की मूर्ति (चरणों) पर वह कमल ग्वाला ने अपने हाथों से भक्तिपूर्वक चढ़ा दिया। यथा—

तदा गोपालकः सोऽपि स्थित्वा श्रीमज्जिनाग्रतः।
भो सर्वोत्कृष्ट ते पद्म गृहाणेदमिति स्फुटम् ॥१५॥
उक्त्वा जिनेन्द्रपादाब्जो परिक्षिप्त्वा सुपंकजम्।
गतो मुग्धजनानां च भवेत्सत्कर्म शर्मदम् ॥१६॥

इस प्रकार एक शूद्र ग्वाला के द्वारा जिन प्रतिमा के चरणों पर कमल का चढ़ाया जाना शूद्रों के पूजाधिकार को स्पष्ट सूचित

करता है। ग्रन्थकार ने भी ऐसे मुग्धजनों के इस कार्य को सुख-कारी बतलाया है।

इसी प्रकार और भी अनेक कथायें शास्त्रों में भरी पड़ी है जिनमें शूद्रों को वही अधिकार दिये गये हैं जो कि अन्य वर्णों को हैं।

सोमदत्त माली प्रति दिन जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता था। चम्पानगर का एक ग्वाला मुनिराज से णमोकार मन्त्र सीख कर स्वर्ग गया। अनंगसेना वेश्या अपने प्रेमी धनकीर्ति सेठ के मुनि हो जाने पर स्वयं भी दीक्षित हो गई और स्वर्ग गई। एक ढीमर (कहार) की पुत्री प्रियंगुलता सम्यक्त्व में दृढ़ थी। उसने एक साधु के पाखण्ड की धज्जियाँ उड़ादी और उसेभी जैन बनाया था। काणा नाम की ढीमर की लड़की को क्षुल्लिका होने की कथा तो हम पहिले ही लिख आये हैं। देविल कुम्हारने एक धर्मशाला बनवाई, वह जैनधर्म का श्रद्धानी था। अपनी धर्मशाला में दिगम्बर मुनिराज को ठहराया। और पुण्य के प्रताप से वह देव हो गया। चामेक वेश्या जैनधर्म की परम उपासिका थी। उसने जिन भवन को दान दिया था। उस में शूद्र जाति के मुनि भी ठहरते थे। तेली जाति की एक महिला मानकव्वे जैन धर्म पर श्रद्धा रखती थी, आर्यिका श्रीमती की वह पट्ट शिष्या थी। उसने एक जिनमन्दिर भी बनवाया था।

इन उदाहरणों से शूद्रोंके अधिकारोंका कुछ भास हो सकता है। श्वेताम्बर जैन शास्त्रों के अनुसार तो चाण्डाल जैसे अस्पृश्य कहे जाने वाले शूद्रों को भी दीक्षा देने का वर्णन है। चित्त और संभूति नामक चाण्डाल पुत्र जब वैदिकों के तिरस्कार से दुखी हो कर आत्मघात करना चाहते थे तब उन्हें जैन दीक्षा सहायक हुई और जैनों ने उन्हें अपनाया। हरिकेशी चाण्डाल भी जब वैदिकों

के द्वारा तिरस्कृत हुआ तब उसने जैनधर्म की शरण ली और जैन दीक्षा लेकर असाधारण महात्मा बन गया।

इस प्रकार जिस जैनधर्म ने वैदिकों के अत्याचार से पीडित प्राणियों को शरण देकर पवित्र बनाया, उन्हें उच्च स्थान दिया और जाति मद का मर्दन किया, वही पतित पावन जैनधर्म वर्तमान के स्वार्थी, संकुचित दृष्टि एवं जाति मदमत्त जैनों के हाथों में आकर बदनाम हो रहा है। खेद है कि हम प्रति दिन शास्त्रों की स्वाध्याय करते हुये भी उनकी कथाओं पर, सिद्धान्त पर, अथवा अन्तरंग दृष्टि पर ध्यान नहीं देते हैं। ऐसी स्वाध्याय किस काम की ? और ऐसा धर्मात्मापना किस काम का ? जहाँ उदारता से विचार न किया जाय।

जैनाचार्यों ने प्रत्येक शूद्र की शुद्धि के लिये तीन बातें मुख्य बताई हैं। १–मांस मदिरादि का त्याग करके शुद्ध आचारवान हो, २–आसन वसन पवित्र हो, ३–और स्नानादि से शरीर की शुद्धि हो। इसी बात को श्रीसोमदेवाचार्य ने 'नीतिवाक्यामृत' में इस प्रकार कहा है—

"आचारानवद्यत्वं शुचिरुपस्कारः शरीरशुद्धिश्च करोति शूद्रानपि देवद्विजातितपस्विपरिकर्मसु योग्यान्।"

इस प्रकार तीन तरह की शुद्धियां होने पर शूद्र भी साधु होने तक के योग्य हो जाता है। आशाधरजी ने लिखा है कि—

"जात्या हीनोऽपि कालादिलब्धौ ह्यात्मास्ति धर्मभाक्।"

अर्थात् जाति से हीन या नीच होनेपर भी कालादिक लब्धि-समयानुकूलता मिलने पर वह जैनधर्म का अधिकारी हो जाता है। समन्तभद्राचार्य के कथनानुसार तो सम्यग्दृष्टि चाण्डाल भी देव

माना गया है, पूज्य माना गया है और गणधरादि द्वारा प्रशंसनीय कहा गया है। यथा—

सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातंगदेहजम् ।
देवा देवं विदुर्भस्मगूढ़ागारान्तरौजसम् ॥२८॥

—रत्नकरण्ड श्रावकाचार।

शूद्रों की तो बात ही क्या है जैन शास्त्रों में महा म्लेच्छों तक को मुनि होने का अधिकार दिया गया है। जो मुनि हो सकता है उसके फिर कौन से अधिकार बाकी रह सकते हैं ? लब्धिसार में म्लेच्छ को भी मुनि होने का विधान इस प्रकार किया है—

तत्तो पडिवज्जगया अज्जमिलेच्छे मिलेच्छ अज्जेय ।
कमसो अवरं अवरं वरं वरं होदि संखं वा ॥१९३॥

अर्थ—प्रतिपद्य स्थानों में से प्रथम आर्यखण्ड का मनुष्य मिथ्यादृष्टि से संयमी हुआ, उसके जघन्य स्थान है। उस के बाद असंख्यात लोक मात्र षट् स्थान के ऊपर म्लेच्छखण्ड का मनुष्य मिथ्यादृष्टि से सकल संयमी (मुनि) हुआ, उसका जघन्य स्थान है। उसके ऊपर म्लेच्छ खण्ड का मनुष्य देश संयत से सकल संयमी हुआ, उसका उत्कृष्ट स्थान है। उसके बाद आर्य खण्ड का मनुष्य देश संयत से सकल संयमी हुआ उसका उत्कृष्ट स्थान है।

लब्धिसार की इसी १९३ वीं गाथा की संस्कृत टीका इस प्रकार है—

"म्लेच्छभूमिजमनुष्याणां सकलसंयमग्रहणं कथं भवतीति नाशंकितव्यं। दिग्विजयकाले चक्रवर्तिना सह आर्यखण्डमागतानां म्लेच्छराजानां चक्रवर्त्यादिभिः सह जातवैवाहिकसंबंधानां संयमप्रतिपत्तेरविरोधात्। अथवा चक्र-

वर्त्यादिपरिणीतानां गर्भेषूत्पन्नस्य मातृपक्षापेक्षया म्लेच्छ-व्यपदेशभाजः संयमसंभवात्। तथा जातीयकानां दीक्षा-र्हत्वे प्रतिषेधाभावात्।"

अर्थात्—कोई यों कह सकता है कि म्लेच्छ भूमिज मनुष्य मुनि कैसे हो सकते हैं? यह शंका ठीक नहीं है, कारण कि दिग्विजय के समय चक्रवर्ती के साथ आर्य खण्ड में आये हुये म्लेच्छ राजाओं को संयम की प्राप्ति में कोई विरोध नहीं हो सकता। तात्पर्य यह है कि वे म्लेच्छ भूमि से आर्यखण्ड में आकर चक्रवर्ती आदि से संबंधित होकर मुनि बन सकते हैं। दूसरी बात यह है कि चक्रवर्ती के द्वारा विवाही गई म्लेच्छ कन्या से उत्पन्न हुई संतान माता की अपेक्षा से म्लेच्छ कही जा सकती है, और उसके मुनि होने में किसी भी प्रकार से कोई निषेध नहीं हो सकता।

इसी बात को सिद्धान्तराज श्रीजयधवल ग्रंथ में भी इस प्रकार से लिखा है कि—

"जइ एवं कुदो तत्थ संजमग्गहणसंभवोत्ति ण संक-णिज्जं। दिसाविजयपयट्टचक्कवट्टिखंधावारेण सहमज्झिम-खण्डमागयाणं मिलेच्छरायाणं तत्थ चक्कवट्टि आदिहिं सह जादवेवाहियसंबंधाणं संजमपडिवत्तीए विरोहाभावादो। अहवा तत्तत्कन्यकानां चक्रवर्त्यादि परिणीतानां गर्भेषूत्पन्ना मातृपक्षापेक्षया स्वयमकर्मभूमिजा इतीहविवक्षिताः ततो न किंचिद्विप्रतिषिद्धं। तथाजातीयकानां दीक्षार्हत्वेप्रतिषेधा-भावादिति।"

—जयधवल, आराकी प्रति पृ०८२७–२८

इन टीकाओं से दो बातों का स्पष्टीकरण होता है। एक तो म्लेच्छ लोग मुनि दीक्षा तक ले सकते हैं और दूसरे म्लेच्छ कन्या से विवाह करने पर भी कोई धर्म कर्म की हानि नहीं हो सकती, प्रत्युत उस म्लेच्छ कन्या से उत्पन्न हुई संतान भी उतनी ही धर्मादि की अधिकारिणी होती है जितनी कि सजातीय कन्या से उत्पन्न हुई सन्तान।

प्रवचनसार की जयसेनाचार्य कृत टीका में भी सत् शूद्र को जिन दीक्षा लेने का स्पष्ट विधान है। यथा—

"एवंगुणविशिष्टपुरुषो जिनदीक्षाग्रहणे योग्यो भवति। यथायोग्यं सच्छूद्राद्यपि"

और भी इसी प्रकार के अनेक कथन जैन शास्त्रों में पाये जाते हैं जो जैनधर्म की उदारता के द्योतक हैं। प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक दशा में धर्म सेवन करनेका अधिकार है। 'हरिवंशपुराण' के २६वें सर्ग के श्लोक १४ से २२ तक का वर्णन देखकर पाठकों को ज्ञात हो जायगा कि जैनधर्म ने कैसे कैसे अस्पृश्य शूद्र समान व्यक्तियों को जिन मन्दिर में जाकर धर्म कमाने का अधिकार दिया है। वह कथन इस प्रकार है कि वसुदेव अपनी प्रियतमा मदनवेगा के साथ सिद्धकूट चैत्यालय की वंदना करने गये। वहाँ पर चित्र विचित्र वेषधारी लोगों को बैठा देखकर कुमार ने रानी मदनवेगा से उन की जाति जानने बावत कहा। तब मदनवेगा बोली—

मैं इनमें से इन मातंग जाति के विद्याधरों का वर्णन करती हूं नील मेघ के समान श्याम नीली माला धारण किये मातंगस्तंभ के सहारे बैठे हुये ये मातंग जाति के विद्याधर हैं॥ १५॥ मुर्दों की हड्डियों के भूषणों से युक्त राख के लपेटने से भद मैले स्मशान

स्तंभ के सहारे बैठे हुये यह श्मशान जाति के विद्याधर हैं ॥१६॥ वैडूर्य मणि के समान नीले नीले वस्त्रों को धारण किये पाण्डुर स्तंभ के सहारे बैठे हुये पाण्डुक जाति के विद्याधर हैं ॥ १७ ॥ काले काले मृग चर्मों को ओढे, काले चमड़े के वस्त्र और मालाओं को धारे काल स्तंभ का आश्रय लेकर बैठे हुए ये कालश्वपा जाति के विद्याधर हैं ॥ १८ ॥ इत्यादि

इससे क्या सिद्ध होता है ? यही न कि रुंड मुंड को गले में डाले हुये, हड्डियों के आभूषण पहिने हुये और चमड़े के वस्त्र चढ़ाये हुये लोग भी सिद्धकूट जिन चैत्यालय के दर्शन करते थे ? मगर विचार तो करिये कि आज जैनों ने उस उदारता का कितनी निर्दयता से विनाश किया है। यदि वर्तमान में जैनधर्म की उदारता से काम लिया जाय तो जैनधर्म विश्वधर्म हो जाय और समस्त विश्व जैनधर्मी हो जाय।

स्त्रियों के अधिकार।

जैनधर्म की सब से बड़ी उदारता यह है कि पुरुषों की भांति स्त्रियों को भी तमाम धार्मिक अधिकार दिये गये हैं। जिस प्रकार पुरुष पूजा प्रक्षाल कर सकता है उसी प्रकार स्त्रियां भी करसकती हैं। यदि पुरुष श्रावक के उच्च व्रतों को पाल सकता है तो स्त्रियां भी उच्च श्राविका होसकती हैं। यदि पुरुष ऊंचे से ऊंचे धर्मग्रन्थों के पाठी होसकते हैं तो स्त्रियों को भी यही अधिकार हैं। यदि पुरुष मुनि होसकता है तो स्त्रियां भी आर्यिका होकर पंच महाव्रत पालन करती हैं।

धार्मिक अधिकारों की भांति सामाजिक अधिकार भी स्त्रियों के लिये समान ही हैं यह बात दूसरी है कि वैदिक धर्म आदि के प्रभाव से जैनसमाज अपने कर्तव्यों को और धर्म की आज्ञाओं

को भूलकर विपरीत मार्ग को भी धर्म समझ रही हो। जैसे सम्पत्ति का अधिकारी पुत्र तो होता है किन्तु पुत्रियों को उसका अधिकारी नहीं माना जाता है। ऐसा क्यों होता है? क्या पुत्र की भांति पुत्री को माता ९ माह पेट में नहीं रखती? क्या पुत्र के समान पुत्री के जनने में कष्ट नहीं सहती? क्या पुत्र की भांति पुत्री के पालन पोषण में तकलीफें नहीं होतीं? बतलाइये तो सही कि पुत्रियाँ क्यों न पुत्रों के समान सम्पत्ति की अधिकारिणी हों। हमारे जैनशास्त्रों ने तो इस संबंध में पूरी उदारता बताते हुए स्पष्ट लिखा है कि—

"पुत्र्यश्च संविभागार्हाः समं पुत्रैः समांशकैः॥"१५४॥

—आदिपुराण पर्व ३८॥

अर्थात्—पुत्रों की भांति पुत्रियों को भी बराबर भाग बांटकर देना चाहिये।

इसी प्रकार जैन कानून के अनुसार स्त्रियों को, विधवाओं को या कन्याओं को पुरुष के समान ही सब प्रकार के अधिकार हैं। इसके लिये विद्यावारिधि जैन दर्शन दिवाकर पं० चंपतरायजी जैन बैरिष्टर कृत 'जैनलॉ' नामक ग्रन्थ देखना चाहिये।

जैन शास्त्रों में स्त्री सन्मान के भी अनेक कथन पाये जाते हैं। जब कि मूढ़ जनता स्त्रियों को पैर की जूती या दासी समझती है तब जैन राजा महाराजा अपनी रानियों का उठकर सन्मान करते थे और अपना अर्धासन बैठने को देते थे। भगवान महावीर स्वामी की माता महारानी प्रियकारिणी जब अपने स्वप्नों का फल पूछने महाराजा सिद्धार्थ के पास गईं तब महाराजाने अपनी धर्मपत्नी को आधा आसन दिया और महारानी ने उस पर बैठ कर अपने स्वप्नों का वर्णन किया। यथा—

"संप्राप्तार्द्धासना स्वप्नान् यथाक्रममुदाहरत्॥"

—उत्तरपुराण।

इसी प्रकार महारानियों का राजसभाओं में जाने और वहाँ पर सन्मान प्राप्त करने के अनेक उदाहरण जैन शास्त्रों में भरे पड़े हैं। जब कि वेद आदि स्त्रियों को धर्म ग्रन्थों के अध्ययन करने का निषेध करते हुये लिखते हैं कि "स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्" तब जैनग्रंथ स्त्रियों को ग्यारह अंग की धारी होना बताते हैं। यथा—

द्वादशांगधरो जातः क्षिप्रं मेघेश्वरो गणी।
एकादशांगभृज्जाताऽऽर्यिकापि सुलोचना ॥ ५२ ॥

हरिवंशपुराण सर्ग १२।

अर्थात्—जयकुमार भगवान का द्वादशांग धारी गणधर हुआ और सुलोचना ग्यारह अंग की धारक आर्यिका हुई।

इसी प्रकार स्त्रियाँ सिद्धान्त ग्रन्थों के अध्ययन के साथ ही जिनप्रतिमा का पूजा प्रक्षाल भी किया करती थीं। अंजना सुन्दरी ने अपनी सखी वसन्तमाला के साथ बन में रहते हुये गुफा में विराजमान जिनमूर्ति का पूजन प्रक्षाल किया था। मदनवेगा ने वसुदेव के साथ सिद्धकूट चैत्यालय में जिन पूजा की थी। मैना-सुन्दरी तो प्रति दिन प्रतिमा का प्रक्षाल करती थी और अपने पति श्रीपाल राजा को गंधोदक लगाती थी। इसी प्रकार स्त्रियों द्वारा पूजा प्रक्षाल किये जाने के अनेक उदाहरण मिल सकते हैं।

हर्ष का विषय है कि आज भी जैन समाज में स्त्रियाँ पूजन प्रक्षाल करती हैं, मगर खेद है कि अब भी कुछ हठग्राही लोग स्त्रियों को इस धर्म कृत्य का अनधिकारी समझते हैं। ऐसी अवि-चारित बुद्धि पर दया आती है। कारण कि जो स्त्री आर्यिका होने का अधिकार रखती है वह पूजा प्रक्षाल न कर सके यह विचित्रता की बात है। पूजा प्रक्षाल तो आरंभ होने के कारण कर्म बंध का निमित्त है, इस से तो संसार (स्वर्ग आदि) में ही चक्कर लगाना

पड़ता है जब कि आर्यिका होना संवर और निर्जरा का कारण है जिससे क्रमशः मोक्ष की प्राप्ति होती है । तब विचार करिये कि एक स्त्री मोक्ष के कारणभूत संवर निर्जरा करने वाले कार्य तो कर सके और संसार के कारणभूत बंध कर्ता पूजन प्रक्षाल आदि न कर सके, यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है ?

यदि सच पूछा जाय तो जैनधर्म सदा से उदार रहा है, उसे स्त्री पुरुष या ब्राह्मण शूद्र का कोई पक्षपात नहीं था। हाँ, कुछ ऐसे दुराग्रही पापात्मा हो गये हैं जिन्होंने ऐसे पक्षपाती कथन कर के जैनधर्म को कलंकित किया है। इसी से खेद खिन्न होकर आचार्य कल्प पंडित प्रवर टोडरमलजी ने लिखा है कि—

"बहुरि केई पापी पुरुषां अपना कल्पित कथन किया है। अर तिनकौं जिन वचन ठहरावे हैं। तिनकौं जैनमत का शास्त्र जानि प्रमाण न करना। तहां भी प्रमाणादिक तैं परीक्षा करि विरुद्ध अर्थ को मिथ्या जानना।"

—मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० ३०७॥

तात्पर्य यह है कि जिन ग्रन्थों में जैनधर्म की उदारता के विरुद्ध कथन है वह जैन ग्रंथ कहे जाने पर भी मिथ्या मानना चाहिये। कारण कि कितने ही पक्षपाती लोग अन्य संस्कृतियों से प्रभावित होकर स्त्रियों के अधिकारों को तथा जैनधर्म की उदारता को कुचलते हुये भी अपने को निष्पक्ष मानकर ग्रंथकार बन बैठे हैं। जहाँ शूद्र कन्यायें भी जिन पूजा और प्रतिमा प्रक्षाल कर सकती हैं (देखो गौतमचरित्र तीसरा अधिकार) वहाँ स्त्रियों को पूजाप्रक्षाल का अनधिकारी बताना महा मूढ़ता नहीं तो और क्या है? स्त्रियाँ पूजा प्रक्षाल ही नहीं करती थीं किन्तु मुनि दान भी देती थी और अब भी देती हैं। यथा—

श्रीजिनेन्द्रपदांभोजसपर्यायां सुमानसा ।
शचीव सा तदा जाता जैनधर्मपरायणा ॥८६॥

ज्ञानधनाय कांताय शुद्धचारित्रधारिणे ।
मुनीन्द्राय शुभाहारं ददौ पापविनाशनम् ॥८७॥

—गौतमचरित्र तीसरा अधिकार ॥

अर्थात्—स्थंडिला नाम की ब्राह्मणी जिन भगवान की पूजा में अपना चित्त लगाती थी और इन्द्राणी के समान जैनधर्म में तत्पर हो गई थी। उस समय वह ब्राह्मणी सम्यग्ज्ञानी शुद्धचारित्र धारी उत्तम मुनियों को पापनाशक शुभ आहार देती थी।

इसी प्रकार स्त्रियों की धार्मिक स्वतंत्रता के अनेक उदाहरण मिलते हैं। जहाँ तुलसीदासजी ने लिख मारा है कि—

ढोर गंवार शूद्र अरु नारी।
ये सब ताड़न के अधिकारी॥

वहाँ जैनधर्म ने स्त्रियों को प्रतिष्ठा करना बताया है, सन्मान करना सिखाया है और उन्हें समान अधिकार दिये हैं। जहाँ वेदों में स्त्रियों को पढ़ाने की आज्ञा नहीं है वहाँ जैनियों के प्रथम तीर्थंकर भगवान आदिनाथ ने स्वयं अपनी ब्राह्मी और सुन्दरी नामक पुत्रियों को पढ़ाया था। उन्हें स्त्री जाति के प्रति बहुत सन्मान था। पुत्रियों को पढ़ाने के लिये वे इस प्रकार उपदेश करते हैं कि—

इदं वपुर्वयश्चेदमिदं शीलमनीदृशं।
विद्यया चेद्विभूष्येत सफलं जन्म वामिदं ॥९७॥

विद्यावान् पुरुषो लोके सम्मतिं याति कोविदैः।
नारी च तद्वती धत्ते स्त्रीसृष्टेरग्रिमं पदं ॥ ९८ ॥

तद्विद्या ग्रहणे यत्नं पुत्रिके कुरुतं युवां ।
तत्संग्रहणकालोऽयं युवयोर्वर्ततेऽधुना ॥ १०२ ॥

आदिपुराण पर्व १६।

अर्थात्—पुत्रियो ! यदि तुम्हारा यह शरीर अवस्था और अनुपम शील विद्या से विभूषित किया जावे तो तुम दोनों का जन्म सफल हो सकता है। संसार में विद्यावान् पुरुष विद्वानों के द्वारा मान्य होता है। अगर नारी पढ़ी लिखी विद्यावती हो तो वह स्त्रियों में प्रधान गिनी जाती है। इस लिये पुत्रियो ! तुम भी विद्या ग्रहण करने का प्रयत्न करो। तुम दोनों को विद्या ग्रहण करने का यही समय है।

इस प्रकार स्त्री शिक्षा के प्रति सद्भाव रखने वाले भगवान् आदिनाथ ने विधिपूर्वक स्वयं ही पुत्रियोंको पढ़ाना प्रारंभ किया। इस संबंध में विशेष वर्णन आदिपुराण के इसी प्रकरण से ज्ञात होगा। इससे मालूम होगा कि इस युग के स्रष्टा भगवान आदिनाथ स्वामी स्त्री शिक्षा के प्रचारक थे। उन्हें स्त्रियों के उत्थान की चिंता थी और वे स्त्रियों को समानाधिकारिणी मानते थे।

मगर खेद है कि उन्हीं के अनुयायी कहे जाने वाले कुछ स्वार्थियों ने स्त्रियों को विद्याध्ययन, पूजा प्रक्षाल आदि का अनधिकारी बताकर स्त्री जाति के प्रति घोर अन्याय किया है। स्त्री जाति के अशिक्षित रहने से सारे समाज और देश का जो भारी नुकसान हुआ है वह अवर्णनीय है। स्त्रियों को मूर्ख रख कर स्वार्थी पुरुषों ने उनके साथ पशु तुल्य व्यवहार करना प्रारंभ कर दिया और मनमाने ग्रंथ बनाकर उनकी भर पेट निन्दा कर डाली। एक स्थान पर नारी निन्दा करते हुये एक विद्वान् ने लिखा है कि—

आपदामकरो नारी नारी नरकवर्तिनी ।
विनाशकारणं नारी नारी प्रत्यक्षराक्षसी ॥

इस विद्वेष, पक्षपात और नीचता का क्या कोई ठिकाना है ? जिस प्रकार स्वार्थी पुरुष स्त्रियों के निन्दा सूचक श्लोक रच सकते हैं उसी प्रकार स्त्रियाँ भी यदि विदुषी होकर ग्रंथ रचना करती तो वे भी यों लिख सकती थीं कि—

पुरुषो विपदां खानिः पुमान् नरकपद्धतिः ।
पुरुषः पापानां मूलं पुमान् प्रत्यक्षराक्षसः ॥

कुछ जैन ग्रन्थकारों ने तो पीछे से न जाने स्त्रियों के प्रति क्या क्या लिख मारा है। कहीं उन्हें विष वेल लिखा है तो कहीं जहरीली नागिन लिख मारा है, कहीं विष बुझी कटारी लिखा है तो कहीं दुर्गुणों की खान लिख दिया है। इस प्रकार लिख लिखकर पक्षपात से प्रज्वलित अपने कलेजों को ठंडा किया है। मानो इसी के उत्तर स्वरूप एक वर्तमान कवि ने बड़ी ही सुन्दर कविता में लिखा है कि—

वीर, बुद्ध अरु राम कृष्ण से अनुपम ज्ञानी ।
तिलक, गोखले, गांधी से अद्भुत गुण खानी ॥
पुरुष जाति है गर्व कर रहो जिन के ऊपर ।
नारि जाति थी प्रथम शिक्षिका उनकी भूपर ॥
पकड़ पकड़ उँगली हमने चलना सिखलाया ।
मधुर बोलना और प्रेम करना सिखलाया ॥
राजपूतिनी वेष धार मरना सिखलाया ।
व्याप्त हमारी हुई स्वर्ग अरु भू पर माया ॥
पुरुष वर्ग खेला गोदी में सतत हमारी ।

शूद्रा शूद्रेण वोढव्या नान्या स्वां तां च नैगमः ।
वहेत् स्वां ते च राजन्यः स्वां द्विजन्मा क्वचिच्चताः ॥

अर्थात्—शूद्र को शूद्र की कन्या से विवाह करना चाहिये, वैश्य वैश्य की तथा शूद्र की कन्या से विवाह कर सकता है, क्षत्रिय अपने वर्ण की तथा वैश्य और शूद्र की कन्यासे विवाह कर सकता है और ब्राह्मण अपने वर्ण की तथा शेष तीन वर्ण की कन्याओं से भी विवाह कर सकता है।

इतना स्पष्ट कथन होते हुए भी जो लोग कल्पित उपजातियों में (अन्तर्जातीय) विवाह करने में धर्म कर्म की हानि समझते हैं उनकी बुद्धि के लिये क्या कहा जाय ? अदीर्घदर्शी, अविचारी एवं हठग्राही लोगों को जाति के झूठे अभिमान के सामने आगम और युक्तियाँ व्यर्थ दिखाई देती हैं। जब कि लोगों ने जाति का हठ पकड़ रखा है तब जैन ग्रंथों ने जाति कल्पना की धज्जियाँ उड़ा दी हैं। यथा—

अनादाविह संसारे दुर्वारे मकरध्वजे ।
कुले च कामनीमूले का जातिपरिकल्पना ॥

अर्थात्—इस अनादि संसार में कामदेव सदा से दुर्निवार चला आ रहा है। तथा कुल का मूल कामनी है। तब उसके आधार पर जाति कल्पना करना कहां तक ठीक है? तात्पर्य यह है कि न जाने कब कौन किस प्रकार से कामदेव की चपेट में आ गया होगा। तब जाति या उसकी उच्चता नीचता का अभिमान करना व्यर्थ है। यही बात गुणभद्राचार्य ने उत्तरपुराण के पर्व ७४ में और भी स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार कही है—

वर्णाकृत्यादिभेदानां देहेऽस्मिन्न च दर्शनात् ।
ब्राह्मण्यादिषु शूद्राद्यैर्गर्भाधानप्रवर्तनात् ॥४९१॥

अर्थात् इस शरीर में वर्ण या आकार से कुछ भेद दिखाई नहीं देता है। तथा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों में शूद्रों के द्वारा भी गर्भाधान की प्रवृत्ति देखी जाती है। तब कोई भी व्यक्ति अपने उत्तम या उच्च वर्ण का अभिमान कैसे कर सकता है? तात्पर्य यह है कि जो वर्तमान में सदाचारी है वह उच्च है और जो दुराचारी है वह नीच है।

इस प्रकार जाति और वर्ण की कल्पना को महत्व न देकर जैनाचार्यों ने आचरण पर जोर दिया है। जैनधर्म की इस उदारता को ठोकर मार कर जो लोग अन्तर्जातीय विवाह का भी निषेध करते हैं उनकी दयनीय बुद्धि पर विचार न करके जैन समाज को अपना क्षेत्र विस्तृत, उदार एवं अनुकूल बनाना चाहिये।

जैन शास्त्रों को, कथा ग्रंथों को या प्रथमानुयोग को उठाकर देखिये, उनमें आपको पद पद पर वैवाहिक उदारता नजर आयगी। पहले स्वयंवर प्रथा चालू थी, उसमें जाति या कुल की परवाह न करके गुण का ही ध्यान रखा जाता था। जो कन्या किसी भी छोटे या बड़े कुल वाले को उसके गुण पर मुग्ध होकर विवाह लेती थी उसे कोई बुरा नहीं कहता था। हरिवंश पुराण में इस सम्बन्ध में स्पष्ट लिखा है कि—

कन्या वृणीते रुचिरं स्वयँवरगता वरं।
कुलीनमकुलीनं वा क्रमो नास्ति स्वयम्वरे ॥११-७१॥

अर्थात—स्वयंवरगत कन्या अपने पसंद वर को स्वीकार करती है, चाहे वह कुलीन हो या अकुलीन। कारण कि स्वयंवर में कुलीनता अकुलीनता का कोई नियम नहीं होता है।

अब विचार करिये, कि जहां कुलीन अकुलीन का विचार न करके इतनी वैवाहिक उदारता बताई गई है वहां अन्तर्जातीयविवाह तो कौनसी बड़ी बात है। इसमें तो एक ही जाति, एक ही धर्म,

और एक ही आचार विचार वालोंसे संबंध करना है। यह विश्वास रखिये कि जब तक वैवाहिक उदारता पुनः चालू नहीं होगी तबतक जैन समाज की उन्नति होना कठिन ही नहीं किन्तु असंभव है।

उपसंहार

जैनधर्म की उदारता के सम्बन्ध में तो जितना लिखा जाय थोड़ा है। जैनधर्म सभी बातों में उदार है। मैं जैन हूं इसलिये नहीं किन्तु सत्य को सामने रखकर यह बात दावे के साथ कह सकता हूं कि "जितनी उदारता जैनधर्म में पाई जाती है उतनी जगत के किसी भी धर्म में नहीं मिल सकती"। यह बात दूसरी है कि आज जैन समाज उससे विमुख होकर जैनधर्म को कलंकित कर रहा है। इस छोटी सी पुस्तक के कुछ प्रकरणों से जैनधर्म की उदारता का विचार किया जा सकता है। आज भी जैन समाज में कुछ ऐसे साधु पुरुषों का अस्तित्व है जो जैनधर्म की उदारता को पुनः अमल में लाने का प्रयत्न करते हैं। दि० मुनि श्री सूर्यसागरजी महाराज के कुछ विचार इस सम्बन्ध में "पतितोंका उद्धार" प्रकरण में लिखे गये हैं। उसके अतिरिक्त अभी कुछ समय पूर्व जब वे संघ सहित अलीगंज पधारे थे तब उनने एक जैनेतर भाई के प्रश्नों का उत्तर जिन उदार भावों से दिया था उनका कुछ सार इस प्रकार है—

"शूद्र यदि श्रावकाचार पालता हो और सच्छूद्र हो तो उसके यहां साधु आहार भी ले सकता है। शूद्र ही नहीं चाण्डाल तक धर्म का पालन कर सकता है। जैन धर्म ब्राह्मण या बनियों का धर्म नहीं है, वह प्राणी मात्र का धर्म है। आजकल के बनियों ने उसे तालों में बंदकर रखा है। सच्छूद्र अवश्य पूजन करेगा। जिसे आप नहीं छूना चाहते मत छुओ। मगर मन्दिर के आगे मानस्तंभ रखो वह उनकी पूजा करेंगे।" इत्यादि।

यदि इसी प्रकार के उदार विचार हमारे सब साधुओं के हो जावें तो धर्म का उद्धार और समाज का कल्याण होने में विलम्ब न रहे ! मगर खेद है कि कुछ स्वार्थी एवं संकुचित दृष्टि वाले पण्डितमन्यों की चुंगल में फंस कर हमारा मुनि संघ भी जैनधर्म भी उदारता को भूल रहा है।

अब तो इस समय सच्चा काम युवकों के लिये है। यदि वे जागृत होजावें और अपना कर्तव्य समझने लगें तो भारत में फिर वही उदार जैन धर्म फैल जावे।

उत्साही युवको ! अब जागृत होओ, संगठन बनाओ, धर्म को पहिचानो और वह काम कर दिखाओ जिन्हें भगवान अकलंकादि महापुरुषों ने किया था । इसके लिये स्वार्थ त्याग करना होगा, पंचायतों का झूठा भय छोड़ना होगा, वहिष्कार की तोपको अपनी छाती पर दगवाना होगा और अनेक प्रकार से अपमानित होना होगा। जो भाई बहिन तनिक तनिक से अपराधों के कारण जाति पतित किये गये हैं उन्हें शुद्ध करके अपने गले लगाओ, जो दीन हीन पतित जातियाँ हैं उन्हें सुसंस्कारित कर के जैनधर्मी बनाओ, स्त्रियों और शूद्रों के अधिकार उन्हें बिना मांगे प्रदानकरो तथा समझाओ कि तुम्हारा क्या कर्तव्य है। अन्तर्जातीय विवाह का प्रचार करो और प्रतिज्ञा करो कि हम सजातीय कन्या मिलने पर भी विजातीय विवाह करेंगे। जैनधर्म के उदार सिद्धान्तों का जगत में प्रचार करो और सब को बतादो कि जैनधर्म जैसी उदारता किसी भी धर्म में नहीं है। यदि हमारा युवक समुदाय साहस पूर्वक कार्य आरम्भ करदे तो मुझे विश्वास है कि उसके साथ सारी समाज चलने को तैयार हो जायगी। और वह दिन भी दूर नहीं रहेंगे जब स्थिति पालक दल अपनी भूल को समझ कर जैनधर्म की उदारता को स्वीकार करेगा। सच बात तो यह है कि—

"अयोग्यः पुरुषो नास्ति, योजकस्तत्र दुर्लभः"

आज हमारी समाज में सच्चे निस्वार्थी योजक की कमी है। उसकी पूर्ति भी युवकों के हाथ में है। वास्तविक धर्म की उदारता नीचे के ४ पद्यों से ही मालूम हो जावेगी।

धर्म वही जो सब जीवों को भव से पार लगाता हो।
कलह द्वेष मात्सर्य भाव को कोसों दूर भगाता हो॥
जो सब को स्वतन्त्र होने का सच्चा मार्ग बताता हो।
जिसका आश्रय लेकर प्राणी सुखसमृद्धि को पाता हो॥१॥

जहाँ वर्ण से सदाचार पर अधिक दिया जाता हो जोर।
तरजाते हों निमिष मात्र में यमपालादिक अंजन चोर॥
जहाँ जाति का गर्व न होवे और न हो थोथा अभिमान।
वहीधर्म है मनुजमात्र को हो जिसमें अधिकार समान॥२॥

नर नारी पशु पक्षी का हित जिसमें सोचा जाता हो।
दीन हीन पतितों को भी जो प्रेम सहित अपनाता हो॥
ऐसे व्यापक जैनधर्म से परिचित करदो सब संसार।
धर्म अशुद्ध नहीं होता है खुला रहे यदि सबको द्वार॥३॥

प्रेमभाव जग में फैलादो और सत्य का हो व्यवहार।
दुरभिमान को त्याग अहिंसक बनो यही जीवन का सार॥
जैनधर्म की यह उदारता अब फैलादो देश विदेश।
'दास' ध्यान देना इस पर यह महावीर का शुभ सन्देश॥४

पं० परमेष्ठीदासजी जैन न्यायतीर्थ लिखित—

यह पुस्तकें आज ही मंगा कर पढ़िये।

(१) चर्चासागर समीक्षा— इसमें गोबर पंथी ग्रन्थ 'चर्चासागर' की खूब पोल खोली गई है। और दुराग्रही पण्डितों की युक्तियों की धज्जी २ उड़ाई गई है। इस समीक्षा के द्वारा जैन साहित्य पर लगा हुआ कलंक धोया गया है। प्रत्येक समाज हितैषी को यह पुस्तक अवश्य पढ़ना चाहिये। पृष्ठ संख्या ३०० होने पर भी मूल्य मात्र ||=) रखा है।

(२) दान विचार समीक्षा—क्षुल्लक वेषी ज्ञानसागर द्वारा लिखी गई अज्ञानपूर्ण पुस्तक 'दानविचार' की यह युक्ति आगमयुक्त और बुद्धिपूर्ण समीक्षा है। धर्म के नाम पर रचे गये, मलीन साहित्य का भान कराने वाली और इस मैल से दूषित हृदयों को शुद्ध करने वाली यह समीक्षा आपको एक वार अवश्य पढ़ जाना चाहिये। पृ० ९५ मूल्य मात्र =) है।

(३) परमेष्ठि पद्यावली—इसमें महावीर जयन्ती, श्रुत-पंचमी, रक्षा बंधन, पर्यूषण पर्व, दीपावली, होली आदि से संबंध रखने वाली तथा सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रीय एवं युवकों में जीवन डाल देने वाली करीब ५० सुललित भावमय कविताओं का संग्रह है। मूल्य मात्र =)

सूर्यप्रकाश समीक्षा—लेखक पंडित जुगलकिशोर मुख्तार पृ० १४६ मूल्य छह आने।

मंगाने के पते—

(१) जौहरीमल जैन सराफ, बड़ा दरीबा देहली।

(२) दिगम्बर जैन पुस्तकालय, सूरत।

(३) जैनसाहित्य प्रसारक कार्यालय हीरा बाग बम्बई।

जैनधर्म की उदारता

एहु धम्मु जो आयरइ, बंभणु सुद्दवि कोइ।
सो सावहु, किं सावयहं, अण्णु कि सिरि मणि होइ॥

—श्रीदेवसेनाचार्य।

इस (जैन) धर्म का ब्राह्मण या शूद्र आदि जो भी आचरण करता है वही श्रावक (जैन) है। क्योंकि श्रावक के सिर पर कोई मणि तो लगा नहीं रहता।

लेखक

पं० परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थ

विषयानुक्रमणिका ।

	पृष्ठ
१—पापियों का उद्धार	६
२—उच्च और नीचों में समभाव	१४
३—जाति भेद का आधार आचरण पर है ...	१७
४—वर्ण परिवर्तन	२१
५—गोत्र परिव[illegible]	२४
६—पतितों क[illegible] उद्धार	२६
७—शास्त्रीय दण्ड विधान	३३
८—अत्याचारी दण्ड विधान	३७
९—उदारता के उदाहरण	४१
१०—जैनधर्म में शूद्रों के अधिकार	४७
११—स्त्रियों के अधिकार	५५
१२—वैवाहिक उदारता	६२
१३—प्रायश्चित्तमार्ग	७२
१४—जैन शास्त्रों में विजातीय विवाह के प्रमाण	६५
१५—जाति मद	७९
१६—अजैनों को जैन दीक्षा	८१
१७—श्वे० जैन शास्त्रों में उदारता के प्रमाण ...	९१
१८—उपसंहार	९६
१९—उदारता पर शुभ सम्मतियां... ...	९९

जैनधर्म की उदारता पर दो शब्द

संसार में यदि सार्वधर्म होने का महत्व किसी धर्म को हो सकता है तो वह केवल जैनधर्म ही है। जैनधर्म आत्मा की उन्नति का मार्ग है, आत्मोत्थान का सहकारी है और यही क्यों बल्कि संसारी आत्माओंको मुक्तात्मा अर्थात् परमात्मा बनानेका साधन है।

जैनधर्म की शिक्षा स्वावलम्बी बनाने वाली है। जैनधर्म प्राणी मात्र की उन्नति उनके अपने ही पैरों के बल खड़ा होने पर बतलाता है। किसी देवी, देवता या इन्द्र अहमिन्द्र के आश्रित नहीं बतलाता। जैनधर्म किसी वर्ण, जाति, कुल, सम्प्रदाय, गति, गोत्र या व्यक्ति विशेष के लिये नहीं है। यह तो प्राणीमात्र के लिये है। जैनधर्म से जिस प्रकार एक ब्राह्मण, क्षत्री या वैश्य लाभ उठा सकता है उसी प्रकार शूद्र, म्लेच्छ, चाण्डाल और पापी से पापी भी उठा सकता है और हां, मनुष्य ही क्यों पशु पक्षी तक भी लाभ उठा सकते हैं। जैन शास्त्रों में इस प्रकार के हजारों उदाहरण लिखे मिलेंगे। और हां, प्रत्यक्ष को प्रमाण क्या ? जहां पर पूज्य तीर्थङ्करों के समवशरण का वर्णन किया गया है वहां पर पशु पक्षियों के समवशरण में सम्मिलित होने का भी उल्लेख है। मनुष्यों में कोई भेद भाव नहीं दिखाया। समवशरण में जो कोठे मनुष्यों के लिये बनते थे मनुष्य मात्र उनमें बैठकर और भगवान की दिव्य-ध्वनि सुनकर अपने कल्याण का मार्ग पाते थे।

यदि जैनधर्म का कोई महत्व है तो वह यही है कि इस धर्म में प्राणी मात्र को धर्मसाधन के पूर्णाधिकार दिये गये हैं और इसको पालन करते हुये सर्व जीव अपना आत्मकल्याण कर सकते हैं।

हमारे अन्तिम पूज्य तीर्थंकर श्री महावीर भगवानके जीव ने सिंह पर्याय से उन्नति करते करते तीर्थंकर पद पाया है। और परमात्मा बने हैं। जिस समय इनका जीव सिंह पर्याय में था,उस समय की हिंसक क्रियाओं के विचार मात्र से ही घृणा होती है। परन्तु जैनधर्म के प्रताप से यह सिंह का जीव शुद्ध होते २ भगवान महावीर बन गया। बस, यह है जैनधर्म की उदारता और महानता !

आज इस विशाल जैनधर्म को इसके अंधश्रद्धालुओं या एकांत ठेकेदारों ने संकुचित धर्म बना रक्खा है। वे नहीं चाहते कि कोई दूसरा व्यक्ति इससे लाभ ले सके। यह उन लोगों की भूल कहो, अज्ञानता कहो, धर्मान्धता कहो, क्षुद्रता कहो, कृपणता कहो, कायरता कहो, या कहो धर्म डूबने की कलुषित मनोवृत्ति-अत: कुछ भी सही। परन्तु दु:ख के साथ कहना पड़ता है कि उनके इन संकुचित विचारों ने यहां तक जोर पकड़ा है कि वे अपने धर्मबन्धुओं तक को धर्मपालन से वंचित करने पर तुले बैठे हैं।

आज जैनसमाज में दस्सा भाइयों के देव पूजन का आन्दोलन इन्हीं महानुभावों की कृपा दृष्टि से ही उठा हुआ है।

जैनधर्म विशाल धर्म है, संसार व्यापी धर्म है, प्राणी मात्र का धर्म है और धर्म है वास्तव में आत्मीक। इस धर्म की विशालता या उदारता किसी के छुपाने से नहीं छुप सकती। इसकी महानता का प्रकाश तो संसार भर में व्याप रहा है और अध्यात्मवाद की सुगन्धी चारों ओर फैल रही है।

हमारे धर्मबन्धु श्री० पं० परमेष्ठीदासजी सूरत ने जैनधर्म की प्रभावनार्थ 'जैनधर्म की उदारता' नामक पुस्तक लिखी है। इसमें

शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध किया है कि जैन धर्म पापियों, पतितों और सभी प्राणियों का उद्धार करने वाला है। हमने इस पुस्तक को कई बार पढ़ा। हमारी समझ में तो लेखक भाई ने जैन धर्मी होते हुये इस "जैनधर्म की उदारता" पुस्तक को लिखकर अपनी मानसिक उदारता का परिचय दिया है अन्यथा अन्य जैन विद्वानों के संकुचित और कलुषित विचारों ने ऐसे प्रभावशाली विषय पर आज तक भी लेखनी नहीं उठाई। हम आशा करते हैं कि जहां यह पुस्तक अजैनों को जैन धर्म की उदारता बताकर यह भी दिखलायगी कि प्रत्येक मनुष्य जैनधर्म की शरण आसक्ता है वहां जैन धर्म के उन अन्ध श्रद्धालुओं को जो कि जैन धर्म को अपनी घरेलू सम्पत्ति समझे बैठे हैं, उदारताका पाठ भी पढ़ायगी।

हम लेखक भाई से सानुरोध निवेदन करते हैं कि आपकी उदारता इस एक छोटी सी पुस्तिका के लिख देने से ही समाप्त नहीं हो जानी चाहिये। बल्कि इस विषयपर तो आपको लिखते ही रहने की आवश्यकता है। इसके लिये जितना भी परिश्रम आप करें वह थोड़ा है। जब तक हमारे जैन बंधु जैनधर्म की उदारता को भले प्रकार न समझ जांय तबतक लेखनी को विश्राम देना उचित नहीं है। हमारी हार्दिक भावना है कि आपका किया हुआ परिश्रम सफल हो और जैनधर्म की उदारता से सभी मनुष्य लाभ उठावें।

ज्योतिप्रसाद जैन,

भू० संपादक जैन प्रदीप 'प्रेमभवन'- देवबन्द।

दस्साओं का पूजाधिकार

लेखक—

पं० परमेष्ठीदासजी जैन न्यायतीर्थ, सूरत

३२ पृष्ठ का मूल्य एक आना

जिसमें पचाध्यायी, आदिपुराण, उत्तरपुराण, हरिवंश-पुराण, पूजासार, गौतमचरित्र, धर्मसंग्रह, श्रावकाचार, आदि ग्रन्थों से उपरोक्त विषय को सप्रमाण सिद्ध किया है साथ ही सहारनपुर वाले ट्रैक्ट का युक्ति पूर्ण उत्तर दिया है पुस्तक पढ़ने लायक है एक प्रति अवश्य मंगालें और यथेष्ट संख्या में वितीर्ण करें।

एक प्रति मंगाने वालों को -) के टिकट भेजने चाहियें १०० प्रति मंगाने वाले को ४॥) में मिलेंगी।

पुस्तक मिलने का पता—

जोहरीमल जैन सर्राफ

दरीबा कलां, देहली।

नम्र निवेदन

(प्रथमावृत्ति)

जहां उदारता है, प्रेम है, और समभाव है, वहीं धर्म का निवास है। जगत को आज ऐसे ही उदार धर्मकी आवश्यक्ता है। हम ईसाइयों के धर्मप्रचार को देखकर ईर्षा करते हैं, आर्य समाजियों की कार्यकुशलता पर आश्चर्य करते हैं और बौद्ध, ईशु खीस्त, दयानन्द सरस्वती आदिके नामोल्लेख तथा भगवान महावीर का नाम न देखकर दुखी हो जाते हैं! इसका कारण यही है कि उन उन धर्मानुयाइयों ने अपने धर्म की उदारता बताकर जनता को अपनी ओर आकर्षित कर लिया है और हम अपने जैनधर्म की उदारता को दबाते रहे कुचलते रहे और उसका गला घोंटते रहे! तब बताइये कि हमारे धर्मको कौन जान सकता है? भगवान महावीर स्वामी को कौन पहिचान सकता है और उदार जैनधर्म का प्रचार कैसे हो सकता है?

इस छोटी सी पुस्तक में यह बताने का प्रयत्न किया गया है कि 'जैनधर्म की उदारता' जगत के प्रत्येक प्राणी को प्रत्येक दशा में अपना सकती है और उसका उद्धार कर सकती है। आशा है कि पाठकगण इसे आद्योपान्त पढ़ कर अपने कर्तव्य को पहिचानेंगे।

चन्दावाड़ी सूरत।
४-२-३४

परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थ

नम्र निवेदन
(द्वितीयावृत्ति)

एक वर्षके भीतर ही भीतर जैनधर्म की उदारताकी प्रथमावृत्ति प्राय: समाप्त हो चुकी थी। और अब द्वितीयावृत्ति आपके सामने है। जैन समाज ने इस पुस्तक को खूब अपनाया है। और गण्य मान्य अनेक आचार्य, मुनियों, त्यागियों और विद्वानों ने इस पर अपनी शुभ सम्मतियां भी प्रदान की हैं। (उनमें से कुछ पुस्तक के अन्त में प्रगट की गई हैं) यही पुस्तक की सफलता का प्रमाण है।

सुधारप्रेमी प्रकाशक जी महोदय मुझे करीब ६ माह से प्रेरित कर रहे हैं कि मैं इस पुस्तक को संशोधित करके द्वितीय वार छपाने के लिये उनके पास भेज दूं और उदारता का 'द्वितीयभाग' भी जल्दी तैयार कर दूं। किन्तु मैं उनकी आज्ञा का जल्दी पालन नहीं कर सका। अब आज उदारता की द्वितीयावृत्ति तैयार हो रही है। किन्तु द्वितीय भाग तो मैंने अभी तक प्रारम्भ भी नहीं कर पाया है। हां, इसके अन्त में 'परिशिष्ट' भाग लगाया है उससे कुछ विशेष प्रमाण और भी जानने को मिलेंगे। 'परिशिष्ट' भाग में विशाल जैनसंघ, संक्षिप्त जैनइतिहास, वीर और जैन सत्यप्रकाश आदि से सहायता ली गई है। अत: मैं उनके लेखकों का आभारी हूं। इसके बाद समय मिलते ही या तो मैं उदारता का द्वितीय भाग लिखूंगा या एक ऐसा 'कथा संग्रह' तैयार कर रहा हूं जिनमें उदारता पूर्ण कथायें देखने को मिलगी।

'जैनधर्म की उदारता' का गुजराती भाषा में भी अनुवाद हुआ है और उसे 'दि०जैन युवक संघ सूरत' ने तथा अहमदाबाद के एक सज्जन ने प्रगट किया है। तथा इसका मराठी अनुवाद श्रीधर दादाधावते सांगली प्रकट कर रहे हैं। इस प्रकार उदारता का अच्छा प्रचार हुआ है।

जो रूढ़ि के गुलाम हैं, जो लकीर के फकीर हैं और जिन्हें

सत्य के दर्शन नहीं हो सके हैं उनकी ओर से ऐसी पुस्तक का विरोध होना भी स्वाभाविक था, किन्तु आश्चर्य है कि इसका विशेष विरोध करनेकी किसी की हिम्मत नहीं हुई। यह गौरव मुझे अपनी कृति पर नहीं, किंतु जैनधर्म के उदारता पूर्ण उन प्रमाणों पर है, जो इस पुस्तक में दिये हैं और जो सर्वथा अखंडनीय हैं।

हां, उदारता के खण्डन करने का कुछ प्रयास श्री० पं० विद्यानन्दजी शर्मा ने अवश्य किया था। किंतु उनकी लेख माला इतनी अव्यवस्थित, अक्रमिक एवं प्राणहीन रही कि वह २-३ बार में ही बन्द होगई। शर्माजी दो तीन माहमें उदारता के किसी प्रकरणके किसी अंश पर कभी कभी २-४ कालम जैन गजट में लिख डालते थे और फिर चुप्पी साध लेते थे। इस प्रकार उन्हें करीब ६माह हो चुके होंगे। किन्तु वे अभी तक न तो इस क्रम में सफलता पा सके हैं और न धारावाही खण्डन करने के लिये उनके पास सामग्री ही मालूम होती है। मैं इस प्रतीक्षा में था कि वे जरा ढंग से यदि खण्डन पूरा कर देते तो मैं उनका पूर्ण समाधान द्वितीयावृत्ति में कर देता। किन्तु खेद है कि वे ऐसा करनेमें असमर्थ रहे हैं। इस लिये मैंभी जैनमित्र में उनका थोड़ासा उत्तर देकर रहगया। अस्तु

उदारचेता सज्जनो! जैन धर्म की उदारता तो ऐसी है कि यदि उसे निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाय तो अन्तःकरण साक्षी देगा कि जैनधर्म जैसी उदारता अन्यत्र नहीं है। यह धर्म घोर से घोर पापियों को पवित्र करता है, नीच से नीच मानवों को उच्च बना सकता है और पतित से पतित प्राणियों को शुद्ध करके सबको समान बना सकता है। इसकी उदारता को देखिये और उसका प्रचार करिये। इसका उपयोग करिये तथा जन सेवा करके बिचारे भूले भटके भाइयोंको इस मार्ग पर लगाइये। यही मनुष्य भवकी सफलता है।

चन्दाबाडी-सूरत
१२-१२-३५

परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थ
संपादक—'वीर'

लोक में तीन भावनायें कार्य करती मिलती हैं। उनके कारण प्रत्येक प्राणी (१) आत्मस्वातंत्र्य (२) आत्म महत्व और (३) आत्मसुख की अकांक्षा रखता है। निस्सन्देह सब को स्वाधीनता प्रिय है; सब ही महत्वशाली बनना चाहते हैं और सब ही सुख शांति चाहते हैं। मनुष्येतर प्राणी अपनी अबोधता के कारण इन का स्पष्ट प्रदर्शन भले नहीं कर पाते, पर वह जैसी परिस्थिति में होते हैं वैसे में ही मग्न रह कर दिन पूरे कर डालते हैं। किन्तु मनुष्यों में उनसे विशेषता है। उनमें मनन करने की शक्ति विद्यमान है। अच्छे बुरे को अच्छे से ढङ्ग पर जानना वह जानते हैं। विवेक मनुष्य का मुख्य लक्षण है। इस विवेक ने मनुष्य के लिये 'धर्म' का विधान किया है। उसका स्वभाव—उसके लिये सब कुछ अच्छा ही अच्छा धर्म है! उसका धर्म उसे आत्मस्वातंत्र्य, आत्म महत्व और आत्मसुख नसीब कराता है।

किन्तु संसार में तो अनेक मत मतान्तर फैल रहे हैं और सब ही अपने को श्रेष्ठतम घोषित करने में गर्व करते हैं। अब भला कोई किस को सत्य माने? किन्तु उनमें 'धर्म' का अंश वस्तुत: कितना है, यह उनके उदार रूप से जाना जा सक्ता है। यदि वे प्राणीमात्र को समान रूप में धर्मसिद्धि अथवा आत्मसिद्धि कराते हैं—किसी के लिए विरोध उपस्थित नहीं करते तो उन को यथार्थ धर्म मानना ठीक है। परन्तु बात दर-असल यूं नहीं है।

इस्लाम यदि मुस्लिम जगत में भ्रातृभाव को सिरजता है तो मुस्लिम-बाह्य-जगत उसके निकट 'काफिर'—उपेक्षाजन्य है। पशु जगत के लिए उसमें ठौर नहीं—पशुओं को वह अपनी आसाइश की वस्तु समझता है ! तब आज के इस्लाम वाले 'धर्म' का दावा किस तरह कर सक्ते हैं, यह पाठक स्वयं विचारें।

वैदिक धर्म इस्लाम से भी पिछड़ा मिलता है। सारे वैदिक-धर्मानुयायी उसमें एक नहीं हैं ! वर्णाश्रम धर्म—रक्त शुद्धि की भ्रान्तमय धारणा पर एक वेद भगवान के उपासकों को वे टुकड़ों टुकड़ों में बांट देते हैं। शूद्रों और स्त्रियों के लिए वेद-पाठ करना भी वर्जित कर दिया जाता है। जब मनुष्यों के प्रति यह अनुदारता है, तब भला कहिये पशु-पक्षियों की वहां क्या पूछ होगी ? शायद पाठकगण ईसाई मत को 'धर्म' के अति निकट समझें ! किन्तु आज का ईसाई जगत अपने दैनिक व्यवहार से अपने को 'धर्म' से बहुत दूर प्रमाणित करता है। अमेरिका में काले-गोरे का भेद, यूरोप में एक दूसरे को हड़प जाने की दुर्नीति ईसाईयों को विवेक से अति दूर भटका सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है।

सचमुच यथार्थ 'धर्म' प्राणी मात्र को समान रूप में सुख-शान्ति प्रदान करता है—इसमें भेद भाव हो ही नहीं सकता ! मनुष्य मनुष्य का भेद अप्राकृतिक है ! एक देश और एक जाति के लोग भी काले-गोरे-पीले-उच्च-नीच-विद्वान-मूढ-निर्बल-सबल—सब ही तरह के मिलते हैं। एक ही मां की कोख से जन्मे दो पुत्र परस्पर-विरुद्ध प्रकृति और आचरण को लिए हुए दिखते हैं। इस स्थिति में जन्मगत अन्तर उनमें नहीं माना जा सक्ता। हम कह चुके हैं कि धर्म जीव मात्र का आत्म-स्वभाव (अपना २ धर्म) है !

इस लिये धर्म में यह अनुदारता हो ही नहीं सकती कि वह किन्हीं खास प्राणियों से राग करके उन्हें तो अपना अंकशायी बनाकर उच्च पद प्रदान करदे और किन्हीं को द्वेष भाव में बहाकर आत्मोत्थान करने से ही वञ्चित रक्खे। सच्चा धर्म वह होगा जिसमें जीवमात्र के आत्मोत्थान के लिये स्थान हो। प्रस्तुत पुस्तक को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि निस्सन्देह जैन धर्म एक परमोदार सत्य धर्म है—वह जीवमात्र का कल्याणकर्ता है! धर्म का यथार्थ लक्षण उसमें घटित होता है।

विद्वान् लेखक ने जैन शास्त्रों के अगणित प्रमाणों द्वारा अपने विषय को स्पष्ट कर दिया है। ज्ञानी जीवों को उनके इस सत्प्रयास से लाभ उठाकर अपने मिथ्यात्व जाति मद की मदांधता को नष्ट कर डालना चाहिये। और जगत को अपने बर्ताव से यह बता देना चाहिये कि जैन धर्म वस्तुत: सत्य धर्म है और उसके द्वारा प्रत्येक प्राणी अपनी जीवन आकांक्षाओं को पूरा कर सकता है। जैन धर्म हर स्थिति के प्राणी को आत्मस्वातंत्र्य, आत्ममहत्व और आत्मसुख प्रदान करता है। जन्मगत श्रेष्ठता मानकर मनुष्य के आत्मोत्थान को रोक डालने का पाप उसमें नहीं है। मित्रवर पं० परमेष्ठीदासजी न्यायतीर्थ का ज्ञानोद्योग का यह प्रयास अभिवन्दनीय है। इसका प्रकाश मनुष्य हृदय को आलोकित करे यह भावना है। इति शम।

कामताप्रसाद जैन,

एम. आर. ए. एस. (लन्दन)

सम्पादक 'वीर' अलीगंज।

धन्यवाद !

श्रीमान् दानवीर, जैन समाज भूषण, सेठ ज्वालाप्रसादजी जौहरी महेन्द्रगढ़ बड़े ही उदार चित्त और सरल परिणामी हैं। आप श्वे०स्थानकवासी सम्प्रदाय के स्तम्भ होते हुये भी समस्त जैन समाज के हितैषी हैं। आपने लगभग एक लाख रुपया जैन सूत्रों के प्रचार में लगा दिया है और अब भी लगाते रहते हैं आप जो भी शास्त्र छपाते हैं वे सब अमूल्य वितीर्ण करते हैं।

आपने श्री जैनेन्द्र गुरुकुल पंचकूला की नीव रक्खी और हज़ारों रुपये की लागत से साहित्य भवन, सामायिक भवन, फैमली कार्टर्स आदि इमारतें बनवाकर गुरुकुल को अर्पण कीं, और इसके प्रेम में इतने मुग्ध हुये कि इसके पास ही अपनी ज़मीन खरीद कर "माणक भवन" (अपने बड़े सुपुत्र चि० माणकचन्द के नाम पर) नाम की विशाल कोठी, सुन्दर बग़ीचा आदि बनवाकर प्रति वर्ष कई२ महीना वहां रहने लगे और गुरुकुल के कार्योंमें योग देने लगे।

आजकल आप गुरुकुल कमेटी के अध्यक्ष हैं आपने इस विचार से कि गुरुकुल में इसके प्रेमीजन अपने बालकों को शिक्षा प्राप्त करने के लिये दाखिल करावें, अपने प्रियपुत्र चि० माणकचन्द को ता०२० अक्तूबर सन १९३५ रविवारके दिन दाखिल कर दिया है। अब आप का प्रियपुत्र गुरुकुल के अन्य ब्रह्मचारियों जैसा बन रहा है। मेरी हार्दिक भावना है कि धर्मोपकारी सेठजी के धर्म प्रेम की वृद्धि हो और चि० माणकचन्द जैनधर्म की उच्च शिक्षा प्राप्त करके जैनधर्म का प्रचार और जैनसमाज का सुधार करें। श्रीमान् सेठजी ने मेरी तनिक सी प्रेरणा पर चि०माणकचन्द के गुरुकुल प्रवेश की खुशी में इस "जैन धर्म की उदारता" के प्रकाशनार्थ १०१) प्रदान किये हैं अतः धन्यवाद !

—प्रकाशक

चित्र माणक चन्द जैन (ब्रह्मचारी श्री जैनेन्द्र गुरुकुल पंचकुला) सुपुत्र श्रीमान् दानवीर जैन समाज भूषण सेठ ज्वाला प्रसाद जी जैन जौहरी महेन्द्रगढ़ (पटियाला स्टेट)

Popular Press Delhi.

परमेष्ठिने नमः ॥

जैनधर्म की उदारता ।

पापियों का उद्धार ।

जो प्राणियों का उद्धारक हो उसे धर्म कहते हैं। इसी लिये धर्म का व्यापक, सार्व या उदार होना आवश्यक है। जहां संकुचित दृष्टि है, स्वपर का पक्षपात है, शारीरिक अच्छाई बुराई के कारण आन्तरिक नीच ऊँचपने का भेद भाव है वहां धर्म नहीं हो सकता धर्म आत्मिक होता है शारीरिक नहीं। शरीर की दृष्टि से तो कोई भी मानव पवित्र नहीं है। शरीर सभी अपवित्र हैं। इसलिये आत्मा के साथ धर्म का संबंध मानना ही विवेक है। लोग जिस शरीर को ऊँचा समझते हैं उस शरीर वाले कुगति में भी गये हैं और जिनके शरीर नीच समझे जाते हैं वे भी सुगति को प्राप्त हुये हैं। इसलिये यह निर्विवाद सिद्ध है कि धर्म चमड़े में नहीं किन्तु आत्मा में होता है। इसी लिये जैन धर्म इस बात को स्पष्टतया प्रतिपादित करता है कि प्रत्येक प्राणी अपनी सुकृति के अनुसार उच्च पद प्राप्त कर सकता है। जैन धर्म का शरण लेने के लिये उसका द्वार सबके लिये सर्वदा खुला है। इस बात को रविषेणाचार्य ने इस प्रकार स्पष्ट किया है कि-

अनाथानामबंधूनां दरिद्राणां सुदुःखिनाम् ।
जिनशासनमेतद्धि परमं शरणं मतम् ॥

अर्थात—जो अनाथ हैं, बांधव विहीन हैं, दरिद्री हैं, अत्यन्त दुखी हैं उनके लिए जैन धर्म परम शरणभूत है।

यहां पर कल्पित जातियों या वर्ण का उल्लेख न करके सर्व साधारण को जैनधर्म हीं एक शरणभूत बतलाया गया है। जैनधर्म में मनुष्यों की तो बात क्या पशु पक्षी या प्राणी मात्र के कल्याण का भी विचार किया गया है।

आत्मा का सच्चा हितैषी, जगत के प्राणियों को पार लगाने वाला, महा मिथ्यात्व के गड्ढे से निकाल कर सन्मार्ग पर आरूढ़ करा देने वाला और प्राणीमात्र को प्रेम का पाठ पढ़ाने वाला सर्वज्ञ कथित एक जैनधर्म है। इस में कोई सन्देह नहीं कि प्रत्येक धर्मावलम्बी की अपने अपने धर्म के विषय में यही धारणा रहती है, किन्तु उसको सत्य सिद्ध कर दिखाना कठिन है। जैनधर्म सिखाता है कि अहम्मन्यता को छोड़ कर मनुष्य से मनुष्यता का व्यवहार करो, प्राणी मात्र से मैत्री भाव रखो, और निरंतर परहित निरत रहो। मनुष्य ही नहीं पशुओं तक के कल्याण का उपाय सोचो और उन्हें घोर दु:ख दावानल से निकालो।

धर्म शास्त्र इसके ज्वलंत प्रमाण हैं कि जैनाचार्यों ने हाथी, सिंह, शृगाल, शूकर, बन्दर, नौला, आदि प्राणियों को भी धर्मोपदेश देकर उनका कल्याण किया था (देखो आदिपुराण पर्व १० श्लोक १४६) इसी लिये महात्माओं को अकारणबंधु कह कर पुकारा गया है। एक सच्चे जैन का कर्त्तव्य है कि वह महा दुराचारी को भी धर्मोपदेश देकर उसका कल्याण करे। इस संबंध में अनेक उदाहरण जैन शास्त्रों में भरे पड़े हैं।

(१) जिनभक्त धनदत्त सेठ ने महाव्यसनी वेश्यासक्त दृढ़सूर्यको फांसी पर लटका हुवा देख कर वहीं पर णमोकार मंत्र दिया था, जिसके प्रभाव से वह पापात्मा पुण्यात्मा बनकर देव हुवा था। वही देव धनदत्त सेठ की स्तुति करता हुवा कहता है कि—

अहो श्रेष्ठिन् ! जिनाधीशचरणार्चनकोविद ।
अहं चौरो महापापी दृढ़सूर्याभिधानकः ॥ ३१ ॥
त्वत्प्रसादेन भो स्वामिन् स्वर्गे सौधर्मसंज्ञके ।
देवो महर्द्धिको जातो ज्ञात्वा पूर्वभवं सुधीः ॥ ३२ ॥
—आराधनाकथा नं० २३ वीं ।

अर्थात्—जिन चरण पूजन में चतुर हे श्रेष्ठी ! मैं दृढ़सूर्य नामक महापापी चोर आपके प्रसाद से सौधर्म स्वर्ग में ऋद्धिधारी देव हुआ हूं।

इस कथा से यह तात्पर्य निकलता है कि प्रत्येक जैन का कर्तव्य महापापी को भी पाप मार्ग से निकाल कर सन्मार्ग में लगाने का है। जैनधर्म में यह शक्ति है कि वह महापापियों को शुद्ध करके शुभगति में पहुँचा सकता है। यदि जैनधर्म की उदारता पर विचार किया जावे तो स्पष्ट मालूम होगा कि विश्वधर्म बनने की इसमें योग्यता है या जैनधर्म ही विश्वधर्म हो सकता है। जैनाचार्यों ने ऐसे ऐसे पापियों को पुण्यात्मा बनाया है कि जिनकी कथायें सुनकर पाठक आश्चर्य करेंगे।

(२) अनंगसेना नाम की वेश्या अपने वेश्या कर्म को छोड़कर जैन दीक्षा ग्रहण करती है और जैनधर्म की आराधना करके स्वर्ग में जाती है। (३) यशोधर मुनि महाराज ने मत्स्यभक्षी मृगसेन धीवर को णमोकार मन्त्र दिया और व्रत ग्रहण कराया, जिस से वह मर कर श्रेष्ठिकुल में उत्पन्न हुआ (४) कपिल ब्राह्मण ने गुरुदत्त मुनि को आग लगाकर जला डाला था, फिर भी वह पापी अपने पापों का पश्चात्ताप करके स्वयं मुनि होगया था। (५) ज्येष्ठ, आर्यिका ने एक मुनि से शील भ्रष्ट होकर पुत्र प्रसव किया था

फिर भी वह पुनः शुद्ध होकर आर्यिका होगई थी और स्वर्ग गई। (६) राजा मधु ने अपने माण्डलिक राजा की स्त्री को अपने यहां बलात्कार से रख लिया था और उससे विषय भोग करता रहा, फिर भी वह दोनों मुनि दान देते थे और अन्त में दोनों ही दीक्षा लेकर अच्युत स्वर्ग में गये। (७) शिवभूति ब्राह्मण की पुत्री देववती के साथ शम्भु ने व्यभिचार किया, बाद में वह भ्रष्ट देववती विरक्त होकर हरिकान्ता नामक आर्यिका के पास गई और दीक्षा लेकर स्वर्ग को गई। (८) वेश्यालंपटी अंजन चोर तो उसी भव से मोक्ष जाकर जैनियों का भगवान बन गया था। (९) मांसभक्षी मृगध्वज ने मुनिदीक्षा लेली और वह भी कर्म काटकर परमात्मा बन गया। (१०) मनुष्यभक्षी सौदास राजा मुनि होकर उसी भव से मोक्ष गया। इत्यादि सैकड़ों उदाहरण मौजूद हैं जिनसे सिद्ध होता है कि जैनधर्म पतित पावन है। यह पापियोंको परमात्मा तक बना देने वाला है और सब से अधिक उदार है। (११) यमपाल चाण्डाल की कथा तो जैनधर्म की उदारता प्रगट करने को सूर्य के समान है। जिस चाण्डाल का काम लोगों को फांसी पर लटका कर प्राण नाश करना था वही अछूत कहा जाने वाला पापात्मा थोड़े से व्रत के कारण देवों द्वारा अभिषिक्त और पूज्य हो जाता है। यथा—

तदा तद्व्रतमाहात्म्यात्महाधर्मानुरागतः।
सिंहासने समारोप्य देवताभिः शुभैर्जलैः॥ २६॥
अभिषिच्य प्रहर्षेण दिव्यवस्त्रादिभिः सुधीः।
नानारत्नसुवर्णाद्यैः पूजितः परमादरात्॥ २७॥

अर्थात्—उस यमपाल चाण्डाल को व्रत के महात्म्य से तथा धर्मानुराग से देवों ने सिंहासन पर विराजमान करके उसका अच्छे जल से अभिषेक किया और अनेक वस्त्र तथा आभूषणों से सन्मान किया।

इतना ही नहीं किन्तु राजा ने भी उस चाण्डाल के प्रति नम्रीभूत हो कर उस से क्षमा याचना की थी तथा स्वयं भी उसकी पूजा की थी। यथा—

तं प्रभावं समालोक्य राजाद्यैः परया मुदा।
अभ्यर्चितः स मातंगो यमपालो गुणोज्वलः॥ २८॥

अर्थात्—उस चाण्डाल के व्रत प्रभाव को देख कर राजा तथा प्रजा ने बड़े ही हर्ष के साथ गुणों से समुज्वल उस यमपाल चाण्डाल की पूजा की थी।

देखिये यह कितनी आदर्श उदारता है। गुणों के सामने न तो हीन जाति का विचार हुआ और न उसकी अस्पृश्यता ही देखी गई। मात्र एक चाण्डाल के दृढ़व्रती होने के कारण ही उस का अभिषेक और पूजन तक किया गया। यह है जैनधर्म की सच्ची उदारता का एक नमूना! इसी प्रकरण में जाति मद न करने की शिक्षा देते हुये स्पष्ट लिखा है कि—

चाण्डालोऽपि व्रतोपेतः पूजितः देवतादिभिः।
तस्मादन्यैर्न विप्राद्यैर्जातिगर्वो विधीयते॥ ३०॥

अर्थात—व्रतों से युक्त चाण्डाल भी देवों द्वारा पूजा गया इस लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों को अपनी जाति का गर्व नहीं करना चाहिये।

यहां पर जातिमद का कैसा सुन्दर निराकरण किया गया है!

जैनाचार्यों ने नीच ऊँच का भेद मिटाकर, जाति पांति का पचड़ा तोड़ कर और वर्ण भेद को महत्व न देकर स्पष्ट रूप से गुणों को ही कल्याणकारी बताया है। अमितगति आचार्य ने इसी बात को इन शब्दों में लिखा है कि—

शीलवन्तो गताः स्वर्गे नीचजातिभवा अपि।
कुलीना नरकं प्राप्ताः शीलसंयमनाशिनः॥

अर्थात्—जिन्हें नीच जाति में उत्पन्न हुवा कहा जाता है वे शील धर्मको धारण करके स्वर्ग गये हैं और जिनके लिये उच्च कुलीन होने का मद किया जाता है ऐसे दुराचारी मनुष्य नरक गये हैं।

इस प्रकार के उद्धरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जितनी उदारता, जितना वात्सल्य और जितना अधिकार जैनधर्म ने ऊंच नीच सभी मनुष्यों को दिया है उतना अन्य धर्मों में नहीं हो सकता। जैन धर्म में ही यह विशेषता है कि प्रत्येक व्यक्ति नर से नारायण हो सकता है। मनुष्य की बात तो दूर रही मगर भगवान समन्तभद्र के कथनानुसार तो–

"श्वाऽपि देवोऽपि देवः श्वा जायते धर्मकिल्विषात्"

अर्थात् धर्म धारण करके कुत्ता भी देव हो सकता है और पाप के कारण देव भी कुत्ता हो जाता है।

उच्च और नीचों में समभाव।

इसी प्रकार जैनाचार्यों ने पद पद पर स्पष्ट उपदेश दिया है कि प्रत्येक जिज्ञासु को धर्म मार्ग बतलाओ, उसे दुष्कर्म छोड़ने का उपदेश दो और यदि वह सच्चे रास्ते पर आजावे तो उसके साथ बन्धु सम व्यवहार करो। सच बात तो यह है कि ऊंचों को ऊंच

नहीं बनाया जाता, वह तो स्वयं ऊँच हैं ही, मगर जो भ्रष्ट हैं, पदच्युत हैं, पतित हैं, उन्हें जो उच्च पद पर स्थित करदे वही उदार एवं सच्चा धर्म है। यह खूबी इस पतित पावन जैनधर्म में है। इस संबंध में जैनाचार्यों ने कई स्थानों पर स्पष्ट विवेचन किया है पंचाध्यायीकार ने स्थितिकरण अंगका विवेचन करते हुये लिखा है कि—

सुस्थितीकरणं नाम परेषां सदनुग्रहात्।
भ्रष्टानां स्वपदात्तत्र स्थापनं तत्पदे पुनः॥ ८०७॥

अर्थात्— निज पद से भ्रष्ट हुये लोगों को अनुग्रह पूर्वक उसी पद में पुनः स्थित कर देना ही स्थितिकरण अंग है।

इस से यह सिद्ध है कि चाहे जिस प्रकार से भ्रष्ट या पतित हुये व्यक्तिको पुनः शुद्ध कर लेना चाहिये और उसे फिर से अपने उच्च पद पर स्थित कर देना चाहिये। यही धर्म का वास्तविक अंग है। निर्विचिकित्सा अंग का वर्णन करते हुये भी इसी प्रकार उदारतापूर्ण कथन किया गया है। यथा—

दुर्दैवाद्दुःखिते पुंसि तीव्रासाताघृणास्पदे।
यन्नादयापरं चेतः स्मृतो निर्विचिकित्सकः॥५८३

अर्थात्—जोपुरुष दुर्दैव के कारण दुखी है और तीव्र असाता के कारण घृणा का स्थान बन गया है उसके प्रति अदयापूर्ण चित्त का न होना ही निर्विचिकित्सा है।

बड़े ही खेद का विषय है कि हम आज सम्यक्तके इस प्रधान अंग को भूल गये हैं और अभिमान के वशीभूत होकर अपने को ही सर्व श्रेष्ठ समझते हैं। तथा दीन दरिद्री और दुखियों को नित्य ठुकरा कर जाति मद में मत्त रहते हैं। ऐसे अभिमानियों का

मस्तक नीचा करने के लिये पंचाध्यायीकार ने स्पष्ट लिखा है कि—

नैतत्तन्मनस्यज्ञानमस्म्यहं सम्पदां पदम् ।
नासावस्मत्समो दीनो वराको विपदां पदम् ॥५८४॥

अर्थात्—मन में इस प्रकार का अज्ञान नहीं होना चाहिये कि मैं तो श्रीमान हूं, बड़ा हूँ, अतः यह विपत्तियों का मारा दीन दरिद्री मेरे समान नहीं हो सकता है। प्रत्युत प्रत्येक दीन हीन व्यक्ति के प्रति समानता का व्यवहार रखना चाहिये। जो व्यक्ति जाति मद या धन मद में मत्त होकर अपने को बड़ा मानता है वह मूर्ख है, अज्ञानी है। लेकिन जिसे मनुष्य तो क्या प्राणीमात्र सदृश मालूम हों वही सम्यग्दृष्टि है, वही ज्ञानी है, वही मान्य है, वही उच्च है, वही विद्वान है, वही विवेकी है और वही सच्चा पण्डित है। मनुष्यों की तो बात क्या किन्तु त्रस स्थावर प्राणीमात्र के प्रति सम भाव रखने का पंचाध्यायीकार ने उपदेश दिया है। यथा—

प्रत्युत ज्ञानमेवैतत्तत्र कर्मविपाकजाः ।
प्राणिनः सदृशाः सर्वे त्रसस्थावरयोनयः ॥५८५॥

अर्थात्—दीन हीन प्राणियों के प्रति घृणा नहीं करना चाहिये प्रत्युत ऐसा विचार करना चाहिये कि कर्मों के मारे यह जीव त्रस और स्थावर योनि में उत्पन्न हुये हैं, लेकिन हैं सब समान ही।

तात्पर्य यह है कि ऊँच नीच का भेदभाव रखने वाले को महा अज्ञानी बताया है और प्राणीमात्र पर सम भाव रखने वाले को सम्यग्दृष्टि और सच्चा ज्ञानी कहा है। इन बातों पर हमें विचार करने की आवश्यक्ता है। जैनधर्म की उदारता को हमें अब कार्य रूप में परिणत करना चाहिये। एक सच्चे जैनी के हृदय में न तो जाति मद हो सकता है, न ऐश्वर्य का अभिमान हो सकता है और न पापी या पतितों के प्रति घृणा ही हो सकती है। प्रत्युत वह तो

उन्हें पवित्र बनाकर अपने आसन पर बिठायगा और जैनधर्म की उदारता को जगत में व्याप्त करने का प्रयत्न करेगा। खेद है कि भगवान महावीर स्वामी ने जिस वर्ण भेद और जाति मद को चकनाचूर करके धर्म का प्रकाश किया था, उन्हीं महावीर स्वामी के अनुयायी आज उसी जाति मद को पुष्ट कर रहे हैं।

जाति भेद का आधार आचरण पर है।

ढाई हजार वर्ष पूर्व जब लोग जाति मद में मत्त होकर मन माने अत्याचार कर रहे थे और मात्र ब्राह्मण ही अपने को धर्माधिकारी मान बैठे थे तब भगवान महावीर स्वामी ने अपने दिव्योपदेश द्वारा जाति मूढ़ता जनता में से निकाल दी थी और तमाम वर्ण एवं जातियों को धर्म धारण करने का समानाधिकारी घोषित किया था। यही कारण है कि स्व० लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने सच्चे हृदय से यह शब्द प्रगट किये थे कि—

"ब्राह्मणधर्म में एक त्रुटि यह थी कि चारों वर्णों अर्थात ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों को समानाधिकार प्राप्त नहीं थे। यज्ञ यागादिक कर्म केवल ब्राह्मण ही करते थे। क्षत्रिय और वैश्यों को यह अधिकार प्राप्त नहीं था। और शूद्र विचारे तो ऐसे बहुत विषयों में अभागे थे। जैनधर्म ने इस त्रुटि को भी पूर्ण किया है।" इत्यादि।

इसमें कोई सन्देह नहीं जैनधर्म ने महान अधम से अधम और पतित से पतित शूद्र कहलाने वाले मनुष्यों को उस समय अपनाया था जब कि ब्राह्मण जाति उनके साथ पशु तुल्य ही नहीं किन्तु इससे भी अधम व्यवहार करती थी। जैनधर्म का दावा है कि घोर पापी से पापी या अधम नीच कहा जानेवाला व्यक्ति जैन धर्म की शरण लेकर निष्पाप और उच्च हो सकता है। यथा—

महापापप्रकर्ताऽपि प्राणी श्रीजैनधर्मतः ।
भवेत् त्रैलोक्यसंपूज्यो धर्मात्किं भो परं शुभम् ॥

अर्थात्—घोर पाप को करने वाला प्राणी भी जैन धर्म धारण करने से त्रैलोक्य पूज्य हो सकता है ।

जैनधर्म की उदारता इसी बात से स्पष्ट है कि इसको मनुष्य, देव, तिर्यञ्च और नारकी सभी धारण करके अपना कल्याण कर सकते हैं । जैनधर्म पाप का विरोधी है पापी का नहीं । यदि वह पापी का भी विरोध करने लगे, उनसे घृणा करने लग जावे तो फिर कोई भी अधम पर्याय वाला उच्च पर्याय को नहीं पा सकेगा और शुभाशुभ कर्मों की तमाम व्यवस्था ही बिगड़ जायगी ।

जैन शास्त्रों में धर्मधारण करने का ठेका अमुक वर्ण या जाति को नहीं दिया गया है किन्तु मन बचन काय से सभी प्राणी धर्म धारण करने के अधिकारी बताये गये हैं । यथा—

"मनोवाक्कायधर्माय मताः सर्वेऽपि जन्तवः"

—श्री सोमदेवसूरिः ।

ऐसी ऐसी आज्ञायें, प्रमाण और उपदेश जैन शास्त्रों में भरे पड़े हैं; फिर भी संकुचित दृष्टि वाले जाति मद में मत्त होकर इन बातों की परवाह न करके अपने को ही सर्वोच्च समझ कर दूसरों के कल्याण में जबरदस्त बाधा डाला करते हैं । ऐसे व्यक्ति जैन धर्म की उदारता को नष्ट करके स्वयं तो पाप बन्ध करते ही हैं साथ ही पतितों के उद्धार में अवनतों की उन्नति में और पदच्युतों के उत्थान में बाधक होकर घोर अत्याचार करते हैं ।

उनको मात्र भय इतना ही रहता है कि यदि नीच कहलाने वाला व्यक्ति भी जैनधर्म धारण कर लेगा तो फिर हम में और उसमें क्या भेद रहेगा ! मगर उन्हें इतना ज्ञान नहीं है कि भेद

होना ही चाहिये इसकी क्या जरूरत है? जिस जाति को आप नीच समझते हैं उसमें क्या सभी लोग पापी, अन्यायी, अत्याचारी या दुराचारी होते हैं? अथवा जिसे आप उच्च समझे बैठे हैं उस जाति में क्या सभी लोग धर्मात्मा और सदाचार के अवतार होते हैं? यदि ऐसा नहीं है तो फिर आपको किसी वर्ण को ऊंचा या नीच कहने का क्या अधिकार है?

हां, यदि भेद व्यवस्था करना ही हो तो जो दुराचारी है उसे नीच और जो सदाचारी है उसे ऊंच कहना चाहिये। श्रीरविषेणाचार्य ने इसी बात को पद्मपुराण में इस प्रकार लिखा है कि—

चातुर्वर्ण्यं यथान्यच्च चाण्डालादिविशेषणं।
सर्वमाचारभेदेन प्रसिद्धं भुवने गतम्॥

अर्थात्—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वा चाण्डालादिक का तमाम विभाग आचरण के भेद से ही लोक में प्रसिद्ध हुआ है। इसी बातका समर्थन और भी स्पष्ट शब्दों में आचार्य श्री अमितगति महाराज ने इस प्रकार किया है कि—

आचारमात्रभेदेन जातीनां भेदकल्पनम्।
न जातिर्ब्राह्मणीयास्ति नियता क्वापि तात्विकी॥
गुणैः संपद्यते जातिर्गुणध्वंसैर्विपद्यते॥

अर्थात्—शुभ और अशुभ आचरण के भेद से ही जातियों में भेद की कल्पना की गई है, लेकिन ब्राह्मणादिक जाति कोई कहीं पर निश्चित, वास्तविक या स्थाई नहीं है। कारण कि गुणों के होने से ही उच्च जाति होती है और गुणों के नाश होने से उस जाति का भी नाश होजाता है।

पाठको! इससे अधिक स्पष्ट, सुन्दर तथा उदार कथन और

क्या हो सकता है? अमितगति आचार्यने उक्त कथन में तो जातियों को कपूर की तरह उड़ा दिया है। तथा यह स्पष्ट घोषित किया है कि जातियां काल्पनिक हैं-वास्तविक नहीं! उनका विभाग शुभ और अशुभ आचरण पर आधार रखता है न कि जन्मपर। तथा कोई भी जाति स्थायी नहीं है। यदि कोई गुणी है तो उसकी जाति उच्च है और यदि कोई दुर्गुणी है तो उसकीजाति नष्ट होकर नीच हो जाती है। इससे सिद्ध है कि नीच से नीच जाति में उत्पन्न हुआ व्यक्ति शुद्ध होकर जैन धर्म धारण कर सकता है और वह उतना ही पवित्र हो सकता है जितना कि जन्म से धर्म का ठेकेदार मानेजाने वाला एक जैन होता है। प्रत्येक व्यक्ति जैनी बन कर आत्मकल्याण कर सकता है। जब कि अन्य धर्मों में जाति वर्ण या समूह विशेष का पक्षपात है तब जैनधर्म इससे बिलकुल ही अछूता है। यहां पर किसी जातिविशेष के प्रति राग द्वेष नहीं है, किन्तु मात्र आचरणपर ही दृष्टि रक्खीगई है। जो आज ऊंचा है वही अनार्यों के आचरण करनेसे नीच भी बन जाता है। यथा—

"अनार्यमाचरन् किंचिज्जायते नीचगोचरः"

—रविषेणाचार्य।

जैन समाज का कर्तव्य है कि वह इन आचार्य वाक्यों पर विचार करे, जैन धर्म की उदारता को समझे और दूसरों को निःसंकोच जैन धर्म में दीक्षित करके अपने समान बनाले। कोई भी व्यक्ति जब पतित पावन जैन धर्म को धारण करले तब उसको तमाम धार्मिक एवं सामाजिक अधिकार देना चाहिये और उसे अपने भाई से कम नहीं समझना चाहिये। यथा—

विप्रक्षत्रियविट्शूद्राः प्रोक्ताः क्रियाविशेषतः।
जैनधर्मे पराः शक्तास्ते सर्वे बांधवोपमाः॥

अर्थात्—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तो आचरण के भेद से कल्पित किये गये हैं। किन्तु जब वे जैन धर्म धारण कर लेते हैं तब सभी को अपने भाईके समान ही समझना चाहिये।

इसीसे मालूम होगा कि जैनधर्म कितना उदार है और उसमें आते ही प्रत्येक व्यक्ति के साथ किस प्रकार से प्रेम व्यवहार करने का उपदेश दिया गया है। किन्तु जैनधर्म की इस महान् उदारता को जानते हुये भी जिनकी दुर्बुद्धि में जाति मद का विष भरा हुआ है उनसे क्या कहा जाय? अन्यथा जैनधर्म तो इतना उदार है कि कोईभी मनुष्य जैन होकर तमाम धार्मिक एवं सामाजिक अधिकारों को प्राप्त कर सकता है।

वर्ण परिवर्तन।

कुछ लोगोंकी ऐसी धारणा है कि जाति भलेही बदल जाय मगर वर्ण परिवर्तन नहीं हो सकता है, किन्तु उनकी यह भूल है कारण कि वर्ण परिवर्तन हुये बिना वर्ण की उत्पत्ति एवं उसकी व्यवस्था भी नहीं हो सकती थी। जिस ब्राह्मण वर्ण को सर्वोच्च माना गया है उसकी उत्पत्ति पर तनिक विचार करिये तो मालूम होगा कि वह तीनों वर्णों के व्यक्तियों में से उत्पन्न हुआ है। आदिपुराण में लिखा है कि जब भरत राजा ने ब्राह्मण वर्ण स्थापित करने का विचार किया तब राजाओं को आज्ञा दी थी कि:—

सदाचारैर्निजैरिष्टैरनजीविभिरन्विताः।
अद्यास्मदुत्सवे यूयमायातेति पृथक् पृथक्॥ पर्व ३८-१०॥

अर्थात्—आप लोग अपने सदाचारी इष्ट मित्रों सहित तथा नौकर चाकरों को लेकर आज हमारे उत्सव में आओ। इस प्रकार भरत चक्रवर्तीने राजा प्रजा और नौकर चाकरों को बुलाया था, उन

में क्षत्री वैश्य और शूद्र सभी वर्ण के लोग थे। उनमें से जो लोग हरे अंकुरों को मर्दन करते हुये महल में पहुंच गये उन्हें तो चक्रवर्ती ने निकाल दिया और जो लोग हरे घास को मर्दन न करके बाहर ही खड़े रहे या लौट कर वापिस जाने लगे उन्हें ब्राह्मण बना दिया। इस प्रकार तीन वर्णों में से विवेकी और दयालु लोगों को ब्राह्मण वर्ण में स्थापित किया गया।

अब यहां विचारणीय बात यह है कि जब शूद्रों में से भी ब्राह्मण बनाये गये, वैश्यों में से भी बनाये गये और क्षत्रियों में से भी ब्राह्मण तैयार किये गये तब वर्ण अपरिवर्तनीय कैसे होसकता है? दूसरी बात यह है कि तीन वर्णों में से छांट कर एक चौथा वर्ण तो पुरुषों का तैयार होगया, मगर उन नये ब्राह्मणों की स्त्रियां कैसे ब्राह्मण हुई होंगी? कारण कि वे तो महाराजा भरत द्वारा आमंत्रित की नहीं गई थी क्योंकि उसमें तो राजा लोग और उनके नौकर चाकर आदि ही आये थे। उनमें सब पुरुष ही थे। यह बात इस कथन से और भी पुष्ट हो जाती है कि उन सब ब्राह्मणों को यज्ञोपवीत पहनाया गया था। यथा—

तेषां कृतानि चिन्हानि सूत्रैः पद्माह्वयान्निधेः।
उपात्तैर्ब्रह्मसूत्राह्वैरेकाद्येकादशान्तकैः॥ पर्व ३८-२१॥

अर्थात्—पद्म नामक निधि से ब्रह्मसूत्र लेकर एक से ग्यारह तक (प्रतिमानुसार) उनके चिन्ह किये। अर्थात उन्हें यज्ञोपवीत पहनाया।

यह बात तो सिद्ध है कि यज्ञोपवीत पुरुषों को ही पहनाया जाता है। तब उन ब्राह्मणों के लिये स्त्रियां कहां से आई होंगी? कहना होगा कि वही पूर्व की पत्नियां जो क्षत्रिय वैश्य या शूद्र होंगी ब्राह्मणी बनाली गई होंगी। तब उनका भी वर्ण परिवर्तित

होजाना निश्चत है। शास्त्रों में भी वर्ण लाभ करनेवाले को अपनी पूर्वपत्नी के साथ पुनर्विवाह करनेका विधान पाया जाता है यथा-

"पुनर्विवाहसंस्कारः पूर्वः सर्वोऽस्य संमतः"

आदिपुराण पर्व ३९-६०॥

इतना ही नहीं किन्तु पर्व ३९ श्लोक ६१ से ७० तक के कथन से स्पष्ट मालूम होता है कि जैनी ब्राह्मणों को अन्य मिथ्यादृष्टियों के साथ विवाह संबंध करना पड़ता था, बाद में वह ब्राह्मण वर्ण में ही मिलजाते थे। इस प्रकार वर्णों का परिवर्तित होना स्वाभाविक सा होजाता है। अतः वर्ण कोई स्थाई वस्तु नहीं है यह बात सिद्ध हो जाती है। आदि पुराण में वर्ण परिवर्तन के विषय में अक्षत्रियों को क्षत्रिय होने बावत इस प्रकार लिखा है कि—

"क्षत्रियाश्च वृत्तस्थाः क्षत्रिया एव दीक्षिताः"।

इस प्रकार वर्ण परिवर्तन की उदारता बतला कर जैनधर्म ने अपना मार्ग बहुत ही सरल एवं सर्व कल्याणकारी करदिया है। यदि इसी उदार एवं धार्मिक मार्ग का अवलम्बन किया जाय तो जैन समाज की बहुत कुछ उन्नति हो सकती है और अनेक मनुष्य जैन बनकर अपना कल्याण कर सकते हैं। किसी वर्ण या जाति को स्थाई या गतानुगतिक मान लेना जैनधर्म की उदारता का खून करना है। यहां तो कुलाचार को छोड़नेसे कुल भी नष्ट हो जाता है यथा—

कुलावधिः कुलाचाररक्षणं स्यात् द्विजन्मनः।
तस्मिन्न सत्यसौ नष्टक्रियोऽन्यकुलतां व्रजेत् ॥१८१।

—आदिपुराण पर्व ४०।

अर्थ—ब्राह्मणों को अपने कुल की मर्यादा और कुल के

आचारों की रक्षा करना चाहिये। यदि कुलाचार-विचारों की रक्षा नहीं की जाय तो वह व्यक्ति अपने कुल से नष्ट होकर दूसरे कुल वाला हो जायगा।

तात्पर्य यह है कि जाति, कुल, वर्ण आदि सब क्रियाओं पर निर्भर हैं। इनके बिगड़ने सुधरने पर इनका परिवर्तन होजाता है।

गोत्र परिवर्तन।

दुःख तो इस बात का है कि आगम और शास्त्रों की दुहाई देने वाले कितने ही लोग वर्ण को तो अपरिवर्तनीय मानते ही हैं और साथ ही गोत्र की कल्पना को भी स्थाई एवं जन्मगत मानते हैं किन्तु जैन शास्त्रों ने वर्ण और गोत्र को परिवर्तन होने वाला बता कर गुणों की प्रतिष्ठा की है तथा अपनी उदारता का द्वार प्राणी मात्र के लिये खुला करदिया है। दूसरी बात यह है कि गोत्र कर्म किसी के अधिकारों में बाधक नहीं हो सकता। इस संबंध में यहां कुछ विशेष विचार करने की जरूरत है।

सिद्धान्त शास्त्रों में किसी कर्म प्रकृति का अन्य प्रकृति रूप होने को संक्रमण कहा है। उसके ५ भेद होते हैं—उद्वेलन, विध्यात, अधः प्रवृत्त, गुण और सर्व संक्रमण। इनमें से नीच गोत्र के दो संक्रमण हो सकते हैं। यथा—

सत्तण्हं गुणसंकममधापवत्तो य दुक्खमसुहगदी।
संहदि संठाणदसं णीचा पुण्णं थिरछक्कं च ॥ ४२२ ॥
वीसण्हं विज्झादं अधापवत्तो गुणो य मिच्छत्ते ॥४२३॥ कर्मकांड

असातावेदनीय, अशुभगति, ५ संस्थान, ५ संहनन, नीच गोत्र अपर्याप्त, अस्थिरादि ६ इन २० प्रकृतियों के विध्यात, अधःप्रवृत्त, और गुण संक्रमण होते हैं। अतः जिस प्रकार असाता वेदनीय

का साता के रूपमें संक्रमण (परिवर्तन) हो सकता है उसी प्रकार से नीच गोत्र का ऊँच गोत्र के रूप में भी परिवर्तन (संक्रमण) होना सिद्धान्त शास्त्र से सिद्ध है। अतः किसी को जन्म से मरने तक नीचगोत्री ही मानना दयनीय अज्ञान है। हमारे सिद्धान्त शास्त्र पुकार २ कर कहते हैं कि कोई भी नीच से नीच या अधम से अधम व्यक्ति ऊंच पद पर पहुंच सकता है और वह पावन बन जाता है। यह बात तो सभी जानते हैं कि जो आज लोकदृष्टि में नीच था वही कल लोकमान्य, प्रतिष्ठित एवं महान होजाता है। भगवान अकलंकदेव ने राजवार्तिक में ऊंच नीच गोत्र की इस प्रकार व्याख्या की है—

यस्योदयात् लोकपूजितेषु कुलेषु जन्म तदुच्चैर्गोत्रम् ॥
गर्हितेष यत्कृतं तन्नीचैर्गोत्रम् ॥
गर्हितेषु दरिद्राऽप्रतिज्ञातदुःखाः कुलेषु यत्कृतं प्राणिनां जन्म तन्नीचैर्गोत्रं प्रयेतव्यम् ॥

ऊँच नीच गोत्र की इस व्याख्या से मालूम होता है कि जो लोकपूजित-प्रतिष्ठित कुलों में जन्म लेते हैं वे उच्चगोत्री हैं और जो गर्हित अर्थात दुखी दरिद्री कुल में उत्पन्न होते हैं वे नीच गोत्री हैं। यहां पर किसी भी वर्ण की अपेक्षा नहीं रखी गई है। ब्राह्मण होकर भी यदि वह निंद्य एवं दीन दुःखी कुल में है तो नीच गोत्र वाला है और यदि शूद्र होकर भी राजकुल में उत्पन्न हुआ है अथवा अपने शुभ कृत्यों से प्रतिष्ठित है तो वह उच्च गोत्र वाला है।

वर्ण के साथ गोत्र का कोई भी संबंध नहीं है। कारण कि गोत्र कर्म की व्यवस्था तो प्राणीमात्र में सर्वत्र है, किन्तु वर्ण-व्यवस्था तो भारतवर्ष में ही पाई जाती है। वर्ण व्यवस्था मनुष्यों

की योग्यतानुसार श्रेणी विभाग है जब कि गोत्र का आधार कर्म पर है। अतः गोत्रकर्म कुल की अथवा व्यक्ति की प्रतिष्ठा अथवा अप्रतिष्ठा के अनुसार उच्च और नीच गोत्री होसकता है। इसप्रकार गोत्र कर्म की शास्त्रीय व्याख्या सिद्ध होने पर जैन धर्मकी उदारता स्पष्ट मालूम होजाती है। ऐसा होने पर ही जैन धर्म पतित पावन या दीनोद्धारक सिद्ध होता है।

पतितों का उद्धार।

जैन धर्म की उदारता पर ज्यों २ गहरा विचार किया जाता है त्यों त्यों उसके प्रति श्रद्धा बढ़ती जाती है। जैनधर्म ने महान पातकियों को पवित्र किया है, दुराचारियों को सन्मार्ग पर लगाया है, दीनों को उन्नत किया है और पतित का उद्धार करके अपना जगद्बन्धुत्व सिद्ध किया है। यह बात इतने मात्रसे सिद्धहोजाती है कि जैनधर्म में वर्ण और गोत्र को कोई स्थाई, अटल या जन्मगत स्थान नहीं है। जिन्हें जातिका कोई अभिमान है उनके लिये जैन ग्रंथकारों ने इस प्रकार स्पष्ट शब्दों में लिखकर उस जाति अभिमान को चूर चूर कर दिया है कि--

न विप्राविप्रयोरस्ति सर्वथा शुद्धशीलता।
कालेननादिना गोत्रे स्खलनं क्व न जायते॥
संयमो नियमः शीलं तपो दानं दमो दया।
विद्यन्ते तात्त्विका यस्यां सा जातिर्महती मता॥

अर्थात्—ब्राह्मण और अब्राह्मण की सर्वथा शुद्धि का दावा नहीं किया जासकता है, कारण कि इस अनादि काल में न जाने किसके कुल या गोत्र में कब पतन होगया होगा! इस लिये वास्तव में उच्च जाति तो वही है जिसमें संयम, नियम, शील, तप, दान,

दमन और दया पाई जाती है।

इसी प्रकार और भी अनेक ग्रंथों में वर्ण और जाति कल्पना की धज्जी उड़ाई गई है। प्रमेय कमल मार्तण्ड में तो इतनी खूबी से जाति कल्पना का खण्डन किया गया है कि अच्छों अच्छों की बोलती बन्द हो जाती है। इससे सिद्ध होता है कि जैनधर्ममें जाति की अपेक्षा गुणों के लिये विशेष स्थान है। महा नीच कहा जाने वाला व्यक्ति अपने गुणों से उच्च हो जाता है, भयंकर दुराचारी प्रायश्चित लेकर पवित्र हो जाता है और कैसा भी पतित व्यक्ति पावन बन सकता है। इस संबन्ध में अनेक उदाहरण पहिले दो प्रकरणों में दिये गये हैं। उनके अतिरिक्त और भी प्रमाण देखिये।

स्वामी कार्तिकेय महाराज के जीवन चरित्र पर यदि दृष्टिपात किया जावे तो मालूम होगा कि एक व्यभिचारजात व्यक्ति भी किस प्रकार से परम पूज्य और जैनियों का गुरू हो सकता है। उस कथा का भाव यह है कि—अग्नि नामक राजा ने अपनी कृत्तिका नामक पुत्री से व्यभिचार किया और उससे कार्तिकेय नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यथा—

स्वपुत्रो कृत्तिका नाम्नी परिणीता स्वयं हठात्।
कैश्चिद्दिनैस्ततस्तस्यां कार्तिकेयो सुतोऽभवत् ॥

इसके बाद जब व्यभिचारजात कार्तिकेय बड़ा हुआ और पिता कहो या नाना का जब यह अत्याचार ज्ञात हुआ तब विरक्त होकर एक मुनिराज के पास जाकर जैन मुनि होगया। यथा—

नत्वा मुनीन् महाभक्त्या दीक्षामादाय स्वर्गदाम्।
मुनिर्जातो जिनेन्द्रोक्तसप्ततत्त्वविचक्षणः॥

—आराधना कथाकोश की ६६ वीं कथा।

अर्थात्–वह कार्तिकेय भक्तिपूर्वक मुनिराज को नमस्कार करके स्वर्गदायी दीक्षा को लेकर जिनेन्द्रोक्त सप्ततत्वों के ज्ञाता मुनि होगये।

इस प्रकार एक व्यभिचारजात या आज कल के शब्दों में दस्सा या बिनैकावार व्यक्ति का मुनि हो जाना जैनधर्म की उदारता का ज्वलन्त प्रमाण है। वह मुनि भी साधारण नहीं किन्तु उद्भट विद्वान और अनेक ग्रन्थों के रचयिता हुये हैं जिन्हें सारी जैन समाज बड़े गौरव के साथ आज भी भक्तिपूर्वक नमस्कार करती है। मगर दुःख का विषय है कि जाति मद में मत्त होकर जैनसमाज अपने उदार धर्म को भूली हुई है और अपने हजारों भाई बहनों को अपमानित करके उन्हें विनैकावार या दस्सा बनाकर सदा के लिये मक्खी की तरह निकाल कर फैंक देती है। वर्तमान जैन समाज का कर्तव्य है कि वह स्वामी कार्तिकेय की कथा से कुछ बोधपाठ लेवे और जैनधर्मकी उदारता का उपयोग करे। कभी किसी कारण से पतित हुये व्यक्ति को या उसकी सन्तान को सदा के लिये धर्म का अनधिकारी बना देना घोर पाप है।

भावी संतानको दूषित न मानकर उसी दोषी व्यक्ति को पुनः शुद्ध कर लेने बाबत जिनसेनाचार्य ने इस प्रकार स्पष्ट कथन किया है–

कुतश्चित् कारणाद्यस्य कुलं संप्राप्तदूषणं।
सोऽपि राजादिसम्मत्या शोधयेत् स्वं यदा कुलम् ॥१६८
तदास्योपनयार्हत्वं पुत्रपौत्रादिसंततौ।
न निषिद्धं हि दीक्षार्हे कुले चेदस्य पूर्वजाः ॥ १६९

आदिपुराण पर्व ४० ॥

अर्थ–यदि किसी कारण से किसी के कुल में कोई दूषण लग जाय तो वह राजादिकी सम्मतिसे अपने कुलको जब शुद्ध करलेता

है तब उसे फिरसे यज्ञोपवीतादि लेने का अधिकार हो जाता है। यदि उसके पूर्वज दीक्षा योग्य कुल में उत्पन्न हुवे हों तो उसके पुत्र पौत्रादि सन्तानको यज्ञोपवीतादि लेनेका कहीं भी निषेध नहीं है।

तात्पर्य यह है कि किसी की भी सन्तान दूषित नहीं कही जा सकती, इतना ही नहीं किन्तु प्रत्येक दूषित व्यक्ति शुद्ध होकर दीक्षा योग्य होजाता है।

एक बार इटावा में दिगम्बर **आचार्य श्री सूर्यसागर जी महाराज** ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि—"जीव मात्र को जिनेन्द्र भगवान की पूजा भक्ति करने का अधिकार है। जब कि मैंढक जैसे तिर्यञ्च पूजा कर सकते हैं तब मनुष्योंकी तो बात ही क्या है! याद रक्खो कि धर्म किसी की बपौती जायदाद नहीं हैं, जैनधर्म तो प्राणी मात्र का धर्म है, पतित पावन है। वीतराग भगवान पूर्ण पवित्र होते है, कोई त्रिकाल में भी उन्हें अपवित्र नहीं बना सकता। कैसा भी कोई पापी या अपराधी हो उसे कड़ी से कड़ी सजा दो परन्तु धर्मस्थान का द्वार बन्द मत करो। यदि धर्मस्थान ही बन्द होगया तो उसका उद्धार कैसे होगा? ऐसे परम पवित्र-पतित पावन धर्म को पाकर तुम लोगों ने उसकी कैसी दुर्गति करडाली है शास्त्रों में तो पतितों को पावन करनेवाले अनेक उदाहरण मिलते हैं, फिर भी पता नहीं कि जैनधर्म के ज्ञाता बनने वाले कुछ जैन विद्वान उसका विरोध क्यों करते हैं? परम पवित्र,पतित पावन और उदार जैनधर्म के विद्वान संकीर्णता का समर्थन करें यह बड़े ही आश्चर्य की बात है। कहां तो हमारा धर्म पतितों को पावन करने वाला है और कहां आज लोग पतितों के संसर्ग से धर्म को भी पतित हुआ मानने लगे हैं। यह बड़े खेद का विषय है!"

मुनि श्री सूर्यसागरजी महाराज का यह वक्तव्य जैनधर्म की उदारता और वर्तमान जैनों की संकुचित मनोवृत्ति को स्पष्ट सूचित करता है। लोगों ने स्वार्थ, कषाय, अज्ञान एवं दुराग्रह के वशीभूत होकर उदार जैन मार्ग को कंटकाकीर्ण, संकुचित एवं भ्रम पूर्ण बना डाला है। अन्यथा यहां तो महा पापियों का उसी भवमें उद्धार होगया है। देखिये एक धीमर (मच्छीमार)की लड़की उसी भव में क्षुल्लिका होकर स्वर्ग गई थी। यथा-

ततः समाधिगुप्तेन मुनीन्द्रेण प्रजल्पितं।
धर्ममाकर्ण्य जैनेन्द्रं सुरेन्द्राद्यैः समर्चितम् ॥ २४ ॥
संजाता क्षुल्लिका तत्र तपः कृत्वा स्वशक्तितः।
मृत्वा स्वर्गं समासाद्य तस्मादागत्य भूतले ॥ २४ ॥

आराधना कथा कोश कथा ४५ ॥

अर्थात् मुनि श्री समाधिगुप्त के द्वारा निरूपित तथा देवों से पूज्य जिनधर्मका श्रवण करके 'काणा' नामकी धीमर (मच्छीमार) की लड़की क्षुल्लिका हो गई और यथा शक्ति तप कर के स्वर्ग को गई।

जहां मांस भक्षी शूद्र कन्या इस प्रकार से पवित्र होकर जैनों की पूज्य हो जाती है, वहां उस धर्म की उदारता के सम्बन्ध में और क्या कहा जाय? एक नहीं, ऐसे पतित पावन अनेक व्यक्तियों का चरित्र जैन शास्त्रोंमें भरा पड़ा है। उनसे उदारता की शिक्षा ग्रहण करना जैनों का कर्तव्य है।

यह खेद की बात है कि जिन बातों से हमें परहेज करना चाहिये उनकी ओर हमारा तनिक भी ध्यान नहीं है और जिनके विषयमें धर्म शास्त्र एवं लोकशास्त्र खुली आज्ञा देते हैं या जिनके अनेक उदाहरण पूर्वाचार्य ग्रन्थों में लिख गये हैं उन पर ध्यान

नहीं दिया जाता है। प्रत्युत विरोध तक किया जाता है। क्या यह कम दुर्भाग्य की बात है? हमारे धर्म शास्त्रों ने आचार शुद्ध होने वाले प्रत्येक वर्ण या जाति के व्यक्तिको शुद्ध माना है। यथा-

शूद्रोप्युपस्कराचारवपुः शुद्ध्यास्तु तादृशः।
जात्या हीनोऽपि कालादिलब्धौ ह्यात्मास्ति धर्म भाक्॥

सागार धर्मामृत २-२२

अर्थात्— जो शूद्र भी है यदि उसका आसन वस्त्र आचार और शरीर शुद्ध है तो वह ब्राह्मणादि के समान है। तथा जाति से हीन (नीच) होकर भी कालादि लब्धि पाकर वह धर्मात्मा हो जाता है।

यह कैसा स्पष्ट एवं उदारता मय कथन है! एक महा शूद्र एवं नीच जाति का व्यक्ति अपने आचार विचार एवं रहन सहन को पवित्र करके ब्राह्मण के समान बन जाता है। ऐसी उदारता और कहां मिलेगी? जैन धर्म तो गुणों की उपासना करना बतलाता है, उसे जन्म जात शरीर की कोई चिन्ता नहीं है। यथा-

"व्रत स्थमपि चाण्डालं तं देवा ब्राह्मणं विदुः॥"

रविषेणाचार्य।

अर्थात्— चाण्डाल भी व्रत धारण करके ब्राह्मण हो सकता है। कहिये इतनी महान उदारता और कहां हो सकती है? सच बात तो यह है कि—

जहां वर्ण से सदाचार पर अधिक दिया जाता हो जोर।
तर जाते हों निमिष मात्र में यमपालादिक अंजन चोर॥
जहां जाति का गर्व न होवे और न हो थोथा अभिमान।
वही धर्म है मनुजमात्र को हो जिसमें अधिकार समान॥

मनुष्य जाति को एक मान कर उसके प्रत्येक व्यक्ति को समान

अधिकार देना ही धर्म की उदारता है। जो लोग मनुष्यों में भेद देखते हैं उनके लिये आचार्य लिखते हैं—

"नास्ति जाति कृतो भेदो मनुष्याणां गवाश्ववत्"

गुणभद्राचार्य।

अर्थात्—जिस प्रकार पशुओं में या तिर्यंचों में गाय और घोड़े आदि का भेद होता है उस प्रकार मनुष्यों में कोई जाति कृत भेद नहीं है। कारण कि "मनुष्यजातिरेकेव" मनुष्य जाति तो एक ही है। फिर भी जो लोग इन आचार्य वाक्यों की अवहेलना करके मनुष्यों को सैकड़ों नहीं हजारों जातियों में विभक्त करके उन्हें नीच ऊँच मान रहे हैं उनको क्या कहा जाय ?

याद रहे कि आगम के साथ ही साथ जमाना भी इस बात को बतला रहा है कि मनुष्य मात्र से बंधुत्व का नाता जोड़ो, उनसे प्रेम करो और कुमार्ग पर जाते हुये भाइयों को सन्मार्ग बताओ तथा उन्हें शुद्ध करके अपने हृदय से लगाओ। यही मनुष्य का कर्तव्य है यही जीवन का उत्तम कार्य है और यही धर्म का प्रधान अंग है। भला मनुष्यों के उद्धार समान और दूसरा धर्म क्या होसकता है ? जो मनुष्यों से घृणा करता है उसने न तो धर्म को पहिचाना है और न मनुष्यता को ?

वास्तव में जैन धर्म तो इतना उदार है कि जिसे कहीं भी शरण न मिले उसके लिये भी जैन धर्म का फाटक हमेशा खुला रहता है। जब एक मनुष्य दुराचारी होने से जाति वहिष्कृत और पतित किया जा सकता है तथा अधर्मात्मा करार दिया जा सकता है तब यह बात स्वय सिद्ध है कि वही अथवा अन्य व्यक्ति सदाचारी होने से पुनः जाति में आसकता है, पावन हो सकता है और धर्मात्मा बन सकता है। समझ में नहीं आता कि ऐसी

सीधी सादी एवं युक्तिसंगत बात क्यों समझ में नहीं आती ?

यदि आज कल के जैनियों को भांति महावीर स्वामी की भी संकुचित दृष्टि होती तो वे महा पापी, अत्याचारी, मांस लोलुपी, नर हत्या करने वाले निर्दयी मनुष्यों को इस पतित पावन जैनधर्म की शरण में कैसे आने देते ? तथा उन्हें उपदेश ही क्यों देते ? उनका हृदय तो विशाल था, वे सच्चे पतित पावन प्रभु थे, उनमें विश्व प्रेम था इसीलिये वे अपने शासन में सबको शरण देते थे। मगर समझ में नहीं आता कि महावीर स्वामी के अनुयायी आज उस उदार बुद्धि से क्यों काम नहीं लेते ?

भगवान महावीर स्वामी का उपदेश प्राय: प्राकृत भाषा में पाया जाता है। इसका कारण यही है कि उस जमाने में नीच से नीच वर्ग की भी आम भाषा प्राकृत थी। उन सबको उपदेश देने के लिये ही साधारण बोलचाल भाषा में हमारे धर्म ग्रन्थों की रचना हुई थी।

जो पतित पावन नहीं है वह धर्म नहीं है, जिसका उपदेश प्राणी मात्र के लिये नहीं है वह देव नहीं है, जिसका कथन सबके लिये नहीं है वह शास्त्र नहीं है, जो नीचों से घृणा करता है और उन्हें कल्याण मार्ग पर नहीं लगा सकता वह गुरु नहीं है। जैन धर्म में यह उदारता पाई जाती है इसी लिये वह सर्व श्रेष्ठ है। वर्तमान में जैनधर्म की इस उदारता का प्रत्यक्ष रूप में अमल कर दिखाने की जरूरत है।

शास्त्रीय दण्ड विधान।

किसी भी धर्म की उदारता का पता उस के प्रायश्चित या दण्ड विधान से भी लग सकता है। जैन शास्त्रों में दण्ड विधान बहुत ही उदार दृष्टि से वर्णित किया गया है। यह बात दूसरी है

कि हमारी समाज ने इस ओर बहुत दुर्लक्ष्य किया है; इसी लिये उसने हानि भी बहुत उठाई है। सभ्य संसार इस बात को पुकार पुकार कर कहता है कि अगर कोई अंधा पुरुष ऐसे मार्ग पर जा रहा हो कि जिस पर चल कर उसका आगे पतन हो जायगा, भयानक कुये में जा गिरेगा और लापता हो जायगा तो एक दयालु समझदार एवं विवेकी व्यक्ति का कर्तव्य होना चाहिये कि वह उस अंधे का हाथ पकड़ कर ठीक मार्ग पर लगादे, उसको भयानक गर्त से उबार ले और कदाचित वह उस महागर्त में पड़ भी गया हो तो एक सहृदयी व्यक्ति का कर्तव्य है कि जब तक उस अंधे की श्वास चल रही है, जब तक वह अन्तिम घड़ियां गिन रहा है तब तक भी उसे उभार कर उसकी रक्षा करले। बस, यही परम दया धर्म है, और यही एक मानवीय कर्तव्य है।

इसी प्रकार जब हमें यह अभिमान है कि हमारा जैनधर्म परम उदार है सार्वधर्म है, परमोद्धारक मानवीय धर्म है तथा यही सच्ची दृष्टि से देखने वाला धर्म है तब हमारा कर्तव्य होना चाहिये कि जो कुमार्गरत हो रहे हैं, जो सत्यमार्ग को छोड़ बैठे हैं, तथा जो मिथ्यात्व, अन्याय और अभक्ष्य को सेवन करते हैं उन्हें उपदेश देकर सुमार्ग पर लगावें। जिस धर्म का हमें अभिमान है उस से दूसरों को भी लाभ उठाने देवें।

लेकिन जिनका यह भ्रम है कि अन्याय सेवन करने वाला, मांस मदिरा सेवी, मिथ्यात्वी एवं विधर्मी को अपना धर्म कैसे बताया जावे, उन्हें कैसे साधर्मी बनाया जावे, उनकी यह भारी भूल है। अरे! धर्म तो मिथ्यात्व, अन्याय और पापों से छुड़ाने वाला ही होता है। यदि धर्म में यह शक्ति न हो तो पापियों का उद्धार कैसे हो सकता है? और जो अधर्मियों को धर्म पथ नहीं बतला सकता वस धर्म ही कैसे कहा जा सकता है?

दुराचारियों का दुराचार छुड़ाकर उन्हें साधर्मी बनाने से धर्म व समाज लांछित नहीं होता है, किन्तु लांछित होता है तब जबकि उसमें दुराचारी और अन्यायी लोग अनेक पाप करते हुये भी मूंछों पर ताव देवें और धर्मात्मा बने बैठे रहें। विष के खाने से मृत्यु हो जाती है लेकिन उसी विष को शुद्ध करके सेवन करने से अनेक रोग दूर हो जाते हैं। प्रत्येक विवेकी व्यक्ति का हृदय इस बात की गवाही देगा कि अन्याय, अभक्ष्य, अनाचार और मिथ्यात्व का सेवन करने वाले जैन से वह अजैन लाख दरजे अच्छा है जो इन बातों से परे है और अपने परिणामों को सरल एवं निर्मल बनाये रखता है।

मगर खेद का विषय है कि आज हमारी समाज दूसरों को अपनावे, उन्हें धर्म पर लावे यह तो दूर रहा, किन्तु स्वयं ही गिर कर उठना नहीं चाहती, बिगड़कर सुधरना उसे याद नहीं है। इस समय एक कवि का वाक्य याद आ जाता है कि—

"अय कौम तुझको गिर के उभरना नहीं आता।
इक बार बिगड़ कर के सुधरना नहीं आता॥"

यदि किसी साधर्मी भाई से कोई अपराध बन जाय और वह प्रायश्चित लेकर शुद्ध होने को तैयार हो तो भी हमारी समाज उस पर दया नहीं लाती। समाज के सामने वह विचारा मनुष्यों की गणना में ही नहीं रह जाता है। उसका मुसलमान और ईसाई हो जाना मंजूर, मगर फिर से शुद्ध होकर वह जैनधर्मी नहीं हो सकता जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन नहीं कर सकता, समाज में एक साथ नहीं बैठ सकता और किसी के सामने सिर ऊंचा करके नहीं देख सकता; यह कैसी विचित्र विडंबना है!

उदारचेता पूर्वाचार्य प्रणीत प्रायश्चित्त संबंधी शास्त्रों को

देखिये तो मालूम होगा कि उनमें कैसे कैसे पापी, हिंसक, दुराचारी और हत्यारे मनुष्यों तक को दण्ड देकर पुनः स्थितिकरण करने का विधान किया गया है। इस विषयमें विशेष न लिखकर मात्र दो श्लोक ही दिये जाते हैं जिनसे आप प्रायश्चित शास्त्रों की उदारता का अनुमान लगा सकेंगे। यथा—

साधूपासकबालस्त्रीधेनूनां घातने क्रमात्।
यावद् द्वादशमासाः स्यात् षष्ठमर्धार्धहानियुक्॥
—प्रायश्चित्त समुच्चय।

अर्थात्—साधु उपासक, बालक, स्त्री और गाय के वध (हत्या) का प्रायश्चित्त क्रमशः आधी आधी हानि सहित बारह मास तक षष्ठोपवास (वेला) है।

इसका मतलब यह है कि साधु का घात करने वाला व्यक्ति १२ माह तक एकान्तरे से उपवास करे, और इसके आगे उपवास बालक, स्त्री और गाय की हत्या में आधे आधे करे। पुनश्च—

तृणमांसात्पतत्सर्पपरिसर्पजलौकसां।
चतुर्दशनवाद्यन्तक्षमणा निवधे छिदा॥ प्रा० चू०॥

अर्थात्—मृग आदि तृणचर जीवों के घात का १४ उपवास, सिंह आदि मांस भक्षियों के घात का १३ उपवास, मयूरादि पक्षियों के घात का १२ उपवास, सर्पादि के मारने का ११ उपवास, सरट आदि परिसर्पों के घात का १० उपवास और मत्स्यादि जलचर जीवों के घात का ९ उपवास प्रायश्चित बताया गया है।

नोट—विशेष प्रमाण परिशिष्ठ भाग में देखिये।

इतने मात्र से मालूम हो जायगा कि जैनधर्म में उदारता है, प्रेम है, उद्धारकपना है, और कल्याणकारित्व है। एक बार गिरा हुआ व्यक्ति उठाया जा सकता है, पापी भी निष्पाप बनाया जा

सकता है और पतित को पावन किया जा सकता है।

जैनियो ! इस उदारता पर विचार करो, तनिक २ से अपराध करने वालों को जो धुतकार कर सदा के लिये अलहदा कर देते हो यह जुल्म करना छोड़ो और आचार्य वाक्यों को सामने रख कर अपराधी बंधु का सच्चा न्याय करो। अब कुछ उदारता की आवश्यक्ता है और प्रेम भाव की जरूरत है। कारण कि लोगों को तनिक ही धक्का लगाने पर उन से द्वेष या अप्रीति करने पर वे घबड़ा कर या उपेक्षित होकर अपने धर्म को छोड़ बैठते हैं ! और दूसरे दिन ईसाई या मुसलमान होकर किसी गिरजाघर या मसजिद में जा कर धर्म की खोज करने लगते हैं। क्या इस ओर समाज ध्यान नहीं देगी ?

हमारी समाज का सब से बड़ा अन्याय तो यह है कि एक ही अपराध में भिन्न २ दण्ड देती है। पुरुष पापी अपने बलात्कर या छल से किसी स्त्री के साथ दुराचार कर डाले तो स्वार्थी समाज उस पुरुष से लड्डू खाकर उसे जाति में पुनः मिला भी लेती है मगर वह स्त्री किसी प्रकार का भी दण्ड देकर शुद्ध नहीं की जाती ! वह विचारी अपराधिनी पंचों के सामने गिड़गिड़ाती है, प्रायश्चित्त चाहती है, कठोर से कठोर दण्ड लेने को तैयार होती है, फिर भी उसकी बात नहीं सुनी जाती, चाहे वह देखते ही देखते मुसलमान या ईसाई क्यों न हो जाय । क्या यही न्याय है, और यही धर्म की उदारता है ? यह कृत्य तो जैनधर्म की उदारता को कलंकित करने वाले हैं।

अत्याचारी दण्ड विधान।

जैन शास्त्रों में सभी प्रकार के पापियों को प्रायश्चित्त दे कर शुद्ध कर लेने का उदारतामय विधान पाया जाता है। मगर लोग हैं

कि उस ओर समाज का आज तनिक भी ध्यान नहीं है। फिर भी अत्याचारी दण्डविधि तो चालू ही है। वह दण्डविधि इतनी दूषित, अन्याय पूर्ण एवं विचित्र है कि उसे दण्ड विधान की विडम्बना ही कहना चाहिये। बुन्देलखण्ड आदि प्रान्तों का दण्ड विधान तो इतना भयंकर एवं क्रूर है कि उसे देख कर हृदय कांप उठता है! उसके कुछ उदाहरण यहां दिये जाते हैं—

१—मन्दिर में काम करते हुये यदि चिड़िया आदि का अंडा पैर के नीचे अचानक आ जावे और दब कर मर जावे तो वह व्यक्ति और उसके घर के आदमी भी जाति से बन्द कर दिये जाते हैं और उनको मन्दिर में भी नहीं आने दिया जाता!

२—एक बैल गाड़ी में १० जैन स्त्री पुरुष बैठ कर जा रहे हों और उसके नीचे कोई कुत्ता बिल्ली अकस्मात् आकर दब मरे या गाड़ी हांकने वाले के प्रमाद से दब कर मर जाय तो गाड़ी में बैठे हुये सभी व्यक्ति जैनधर्म और जाति से च्युत कर दिये जाते हैं। फिर उन्हें विवाह शादियों में नहीं बुलाया जाता है, उनके साथ रोटी बेटी व्यवहार बन्द कर दिया जाता है और वे देवदर्शन तथा पूजा आदि के अधिकारी नहीं रहते हैं!

३—यदि किसी के मकान या दरवाजे पर कोई मुसलमान द्वेष वश अंडे डाल जावे और वे मरे हुये पाये जायें तो बेचारा वह जैन कुटुम्ब जाति और धर्म से बंद कर दिया जाता है।

४—यदि किसी का नाम लेकर कोई स्त्री पुरुष क्रोधावेश में आकर कुंये में गिर पड़े या विष खा ले अथवा फांसी लगाकर मर जाय तो वह लांछित माना गया व्यक्ति सकुटुम्ब जाति वहिष्कृत किया जाता है और मन्दिर का फाटक भी सदा के लिए बन्द कर दिया जाता है।

५—यदि कोई विधवा स्त्री कुकर्मवश गर्भवती हो जाय और उसे दूषित करने वाला व्यक्ति लोभ देकर उस स्त्री से किसी दूसरे गरीब भाई का नाम लिवा दे तो वह विचारा निर्दोष गरीब धर्म और जाति से पतित कर दिया जाता है।

इसी तरह से और भी अनेक दण्ड की विडम्बनायें हैं जिनके बल पर सैकड़ों कुटुम्ब जाति और धर्म से जुदे कर दिये जाते हैं। उसमें भी मजा तो यह है कि उन धर्म और जाति च्युतों का शुद्धि विधान बड़ा ही विचित्र है। वहां तो 'कुत्ता की छूत बिलैया को' लगाई जाती है। जैसे एक जाति च्युत व्यक्ति हीरालाल किसी पन्नालाल के विवाह में चुपचाप ही मांडवा के नीचे बैठकर सब के साथ भोजन कर आया और पीछे से उसका इस प्रकार से भोजन करना मालूम होगया तो वह हीरालाल शुद्ध हो जायगा, उस के सब पाप धुल जायंगे और वह मन्दिर में जाने योग्य तथा जाति में बैठने योग्य हो जायगा। किन्तु वह पन्नालाल उस दोष का भागी हो जायगा और जो गति कल तक हीरालाल की थी वही आज से पन्नालाल की होने लगेगी! अब पन्नालाल जब धन्नालाल के विवाह में उसी प्रकार से जीम आयगा तो वह शुद्ध हो जायगा और धन्नालाल जाति च्युत माना जायगा। इस प्रकार से शुद्धि की विचित्र परम्परा चालू रहती है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रभावक, धनिक और रौब दौब वाले श्रीमान् लोग किसी गरीब के यहां जीम कर मूंछों पर ताव देने लगते हैं और बेचारे गरीब कुटुम्ब सदा के लिये धर्म और जाति से हाथ धोकर अपने कर्मों को रोया करते हैं। बुन्देलखण्ड में ऐसे जाति च्युत सैकड़ों घर हैं जिन्हें 'बिनैकया' 'बिनैकावार' या 'लुहरीसैन' कहते हैं।

सैकड़ों बिनैकया कुटुम्ब तो ऐसे हैं जिनके दादे परदादे कभी किसी ऐसे ही परम्परागत दोष से च्युत कर डाले गये थे और उन

की वह शुद्ध सन्तान धर्म तथा जाति से च्युत होकर जैनियों का मुँह ताका करती है ! उन विचारों को इसका तनिक भी पता नहीं है कि हम धर्म और जाति से च्युत क्यों हैं उनका बेटी व्यवहार बड़ी ही कठिनाई से उसी विनैकया जाति में हुआ करता है । और वे बिना देवदर्शन या पूजादि के अपना जीवन पूर्ण किया करते हैं।

जैनियो ! अपने वात्सल्य अंग को देखो, स्थितिकरण पर विचार करो, और अहिंसा धर्म की बड़ी बड़ी व्याख्याओं पर दृष्टिपात करो। अपने निरपराध भाइयों को इस प्रकार से मक्खी की भांति निकाल कर फेंक देना और उनकी सन्तान दर सन्तान को भी दोषी मानते रहना तथा उनके गिड़गिड़ाने पर और हजार मिन्नतें करने पर भी ध्यान नहीं देना, क्या यही वात्सल्य है ? क्या यही धर्म की उदारता है ? क्या यही अहिंसा का आदर्श है ?

जब कि ज्येष्ठा आर्यिका के व्यभिचार से उत्पन्न हुआ रुद्र मुनि हो जाता है, अग्नि राजा और उसकी पुत्री कृत्तिका के व्यभिचार से उत्पन्न हुआ पुत्र कार्तिकेय दिगम्बर जैन साधु हो जाता है, और व्यभिचारिणी स्त्री से उत्पन्न हुआ सुदृष्टि का जीव मुनि हो कर उसी भव से मोक्ष जाता है तब हमारी समाज के कर्णधार विचारे उन परम्परागत विनैकावार या जाति च्युत भाइयों को अभी भी जाति में नहीं मिलाना चाहते और न उन्हें जिन मन्दिर में जाकर दर्शन पूजन करने देना चाहते हैं, यह कितना भयंकर अत्याचार है ! जैन शास्त्रों को ताक में रखकर इस प्रकार का अन्याय करना जैनत्व से सर्वथा बाहर है । अतः यदि आप वास्तव में जैन हैं और जैन शास्त्रों की आज्ञा मान्य है तो अपनी समाज में एक भी जैन भाई ऐसा नहीं रहना चाहिये जो जाति या मन्दिर से वहिष्कृत रहे । सबको यथोचित प्रायश्चित्त दे करके शुद्ध कर लेना ही जैनधर्म की सच्ची उदारता है ।

उदारता के उदाहरण।

जैनधर्म में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें जाति या वर्ण की अपेक्षा गुणों को महत्व दिया गया है। यही कारण है कि वर्ण की व्यवस्था जन्मतः न मानकर कर्म से मानी गई है। यथा—

मनुष्यजातिरेकैव जातिनामोदयोद्भवा।
वृत्तिभेदाहिताद्भेदाच्चातुर्विध्यमिहाश्नुते ॥ पर्व ३८-४५ ॥
ब्राह्मणा व्रतसंस्कारात् क्षत्रियाः शस्त्रधारणात्।
वणिज्योऽर्थार्जनन्न्याय्यात् शूद्रा न्यग्वृत्तिसंश्रयात् ॥

—आदिपुराण पर्व ३८-४६

अर्थात्—जाति नाम कर्म के उदय से उत्पन्न हुई मनुष्य जाति एक ही है किन्तु जीविका के भेद से वह चार भागों (वर्णों) में विभक्त होगई है। व्रतों के संस्कार से ब्राह्मण, शस्त्र धारण करने से क्षत्रिय, न्यायपूर्वक द्रव्य कमाने से वैश्य और नीच वृत्ति का आश्रय करने से शूद्र कहे जाते हैं।

तथा च—

क्षत्रियाः क्षतत्राणात् वैश्या वाणिज्ययोगतः।
शूद्राः शिल्पादि सबंधाज्जाता वर्णास्त्रयोऽप्यतः ॥

हरिवंशपुराण सर्ग ६-३६

अर्थात्—दुखियों की र[illegible] करने वाले क्षत्रिय, व्यापार [illegible]रने वाले वैश्य और शिल्पकला से संबंध रखने वाले शूद्र बनाये ग[illegible] थे।

इस प्रकार जैनधर्म में वर्ण विभाग करके भी गुणों की प्र[illegible]ष्ठा की गई है। और जाति या वर्ण का मद करने वालों की निन्दा की गई है तथा उन्हें दुर्गति का पात्र बताया है। आराधना कथाकोश

में लक्ष्मीमती की कथा है। उसे अपनी ब्राह्मण जाति का बहुत अभिमान था। इसी से वह दुर्गति को प्राप्त हुई। इसलिए ग्रंथकार उपदेश देते हुए लिखते हैं कि—

मानतो ब्राह्मणी जाता क्रमाद्धीवरदेहजा।
जातिगर्वो न कर्तव्यस्ततःकुत्रापि धीधनैः॥४५--१६॥

अर्थात्—जाति गर्व के कारण एक ब्राह्मणी भी ढीमर की लड़की हुई, इसलिए विद्वानों को जातिका गर्व नहीं करना चाहिये।

इधर तो जाति का गर्व न करने का उपदेश देकर उदारता का पाठ पढ़ाया है और उधर जाति गर्व के कारण पतित होकर ढीमर के यहां उत्पन्न होने वाली लड़की का आदर्श उद्धार बता कर जैन धर्म की उदारता को और भी स्पष्ट किया है। यथा—

ततः समाधिगुप्तेन मुनीन्द्रेण प्रजल्पितम्।
धर्ममाकर्ण्य जैनेन्द्रं सुरेन्द्राद्यैःसमर्चितम्॥ २४॥
संजाता क्षुल्लिका तत्र तपः कृत्वा स्वशक्तितः।
मृत्वा स्वर्गं समासाद्य तस्मादागत्य भूतले॥२५॥

आराधना कथाकोश नं० ४५॥

अर्थात्—समाधिगुप्त मुनिराज के मुख के जैनधर्म का उपदेश सुनकर वह ढीमर (मच्छीमार) की लड़की क्षुल्लिका होगई और शान्ति पूर्वक तप करके स्वर्ग गई। इत्यादि।

इस प्रकार से एक शूद्र (ढीमर) की कन्या मुनिराज का उपदेश सुनकर जैनियों की पूज्य क्षुल्लिका हो जाती है। क्या यह जैन धर्म की कम उदारता है? ऐसे उदारता पूर्ण अनेक उदाहरण तो इसी पुस्तक के अनेक प्रकरणों में लिखे जा चुके हैं और ऐसे ही सैकड़ों उदाहरण और भी उपस्थित किये जा सकते हैं जो जैन

धर्म का मुख उज्ज्वल करने वाले हैं। लेकिन विस्तार भय से उन सब का वर्णन करना यहां अशक्त है। हां, कुछ ऐसे उदाहरणों का सारांश यहां उपस्थित किया जाता है। आशा है कि जैनसमाज इस पर गंभीरता से विचार करेगी।

१–**अग्निभूत**—मुनि ने चाण्डाल की अंधी लड़की को श्राविका के व्रत धारण कराये। वही तीसरे भव में सुकुमाल हुई थी।

२–**पूर्णभद्र**—और मानभद्र नामक दो वैश्य पुत्रों ने एक चाण्डाल को श्रावक के व्रत ग्रहण कराये। जिससे वह चाण्डाल मर कर सोलहवें स्वर्ग में ऋद्धिधारी देव हुआ।

३–**म्लेच्छ कन्या**—जरा से भगवान नेमिनाथ के चाचा वसुदेवने विवाह किया, जिससे जरत्कुमार हुआ। उसने मुनिदीक्षा ग्रहण की थी।

४–**महाराजा श्रेणिक**—बौद्ध थे तब शिकार खेलते थे और घोर हिंसा करते थे, मगर जब जैन हुए तब शिकार आदि त्याग कर जैनियों के महापुरुष होगये।

५–**विद्युत चोर**—चोरों का सरदार होने पर भी जम्बू स्वामी के साथ मुनि होगया और तप करके सर्वार्थसिद्धि गया।

६–**भैंसों तक का मांस खाजाने वाला**—पापी मृगध्वज

मुनिदत्तमुनेः पार्श्वे जैनींदीक्षां समाश्रितः।
क्षयं नीत्वा सुधीर्ध्यानात् घातिकर्मचतुष्टयम्।
केवलज्ञानमुत्पाद्य संजातो भुवनार्चितः॥

आराधना कथा ५५ वीं॥

मुनिदत्त मुनि के पास जिनदीक्षा लेकर तप द्वारा घातिया कर्मों को नाश कर जगत्पूज्य हो जैनियों का परमात्मा बन गया।

७-परस्त्री सेवीका मुनिदान—राजा सुमुख वीरक सेठ की पत्नी बनमाला पर मुग्ध होगया। और उसे दूतियों के द्वारा अपने महलों में बुला लिया तथा उसे घर नहीं जाने दिया और अपनी स्त्री बना कर उससे प्रगाढ़ काम सेवन करने लगा। एकदिन राजा सुमुख के मकान पर महामुनि पधारे। वे सब जानने वाले विशुद्ध ज्ञानी थे, फिर भी राजा के यहां आहार लिया। राजा सुमुख और बनमाला दोनों (विनैकावार या दस्साओं) ने मिलकर आहार दिया और पुण्य संचय किया। इसके बाद भी वे दोनों काम सेवन करते रहे। एक समय बिजली गिरने से वे मर कर विद्याधर विद्याधरी हुए। इन्हीं दोनों से 'हरि' नामक पुत्र हुआ जिससे 'हरिवंश' की उत्पत्ति हुई। (देखो हरिवंश पुराण सर्ग १४ श्लोक ४७ से सर्ग १५ श्लोक १३ तक)

कहां तो यह उदारता कि ऐसे व्यभिचारी लोग भी मुनिदान देकर पुण्य संचय कर सकें और कहां आज तनिक से लांछन से पतित किया हुआ जैन दस्सा-विनैका या जातिच्युत होकर जिनेन्द्र के दर्शनों को भी तरसता है। खेद !

८-वेश्या और वेश्या सेवी का उद्धार— हरिवंशपुराण के सर्ग २१ में चारुदत्त और बसन्तसेना का बहुत ही उदारतापूर्ण जीवन चरित्र है। उसका कुछ भाग श्लोकों को न लिख कर उनकी संख्या सहित यहां दिया जाता है। चारुदत्त ने बाल्यावस्था में ही अणुव्रत लेलिये थे (२१-१२) फिर भी चारुदत्त काका के साथ बसन्तसेना वेश्या के यहां माता की प्रेरणा से पहुंचाया गया (२१-४०) बसन्तसेना वेश्या की माता ने चारुदत्त के हाथ में अपनी पुत्री का हाथ पकड़ा दिया (२१-५८) फिर वे दोनों मजे से संभोग करते रहे। अन्त में बसन्तसेना की माता ने चारुदत्त को घर से

बाहर निकाल दिया (२१-७३) चारुदत्त व्यापार करने चले गये। फिर वापिस आकर घर में आनन्द से रहने लगे। बसन्तसेना वेश्या भी अपना घर छोड़कर चारुदत्त के साथ रहने लगी। उसने एक आर्यिका के पास श्रावक के व्रत ग्रहण किये थे अतः चारुदत्त ने भी उसे सहर्ष अपनाया और फिर पत्नी बनाकर रखा (२१-१७६) बाद में वेश्या सेवी चारुदत्त मुनि होकर सर्वार्थसिद्धि पधारे तथा उस वेश्या को भी सद्गति मिली।

इस प्रकार एक वेश्या सेवी और वेश्या का भी जहां उद्धार हो सकता हो उस धर्म की उदारता का फिर क्या पूछना? मजा तो यह है कि चारुदत्त उस वेश्या को फिर भी प्रेम सहित अपना कर अपने घरपर रख लेता है और समाजने कोई विरोध नहीं किया। मगर आजकल तो स्वार्थी पुरुष समाज में ऐसे पतितों को एक तो पुनः मिलाते नहीं हैं, और यदि मिलावें भी तो पुरुष को मिलाकर विचारी स्त्री को अनाथिनी, भिखारिणी और पतित बनाकर सदा के लिये निकाल देते हैं। क्या यह निर्दयता जैनधर्म की उदारता के सामने घोर पाप नहीं है?

९—**व्यभिचारिणी की सन्तान**—हरिवंश पुराण के सर्ग २९ की एक कथा बहुत ही उदार है। उसका भाव यह है कि तपस्विनी ऋषिदत्ता के आश्रम में जाकर राजा शीलायुध ने एकान्त पाकर उससे व्यभिचार किया (३९) उसके गर्भ से ऐणी पुत्र उत्पन्न हुआ। प्रसव पीड़ा से ऋषिदत्ता मर गई और सम्यक्त के प्रभाव से नाग कुमारी हुई व्यभिचारी राजा शीलायुध दिगम्बर मुनि होकर स्वग गया (५७)

ऐणी पुत्र की कन्या प्रियंगुसुन्दरी को एकान्त में पाकर वसुदेव ने उसके साथ काम क्रीड़ा की (६८) और उसे व्यभिचारजात जानकर भी अपनाया और संभोग करने के बाद सब के सामने

प्रकट विवाह किया (७०)

१०–मांसभक्षी की मुनिदीक्षा—सुधर्मा राजा को मांस भक्षण का शौक था। एक दिन मुनि चित्ररथ के उपदेश से मांस त्याग कर तीनसौ राजाओं के साथ मुनि हो गया (हरि० ३३-१५२)

११–कुमारी कन्या की सन्तान—राजा पाण्डु ने कुन्ती से कुमारी अवस्था में ही संभोग किया, जिससे कर्ण उत्पन्न हुये।

"पाण्डोः कुन्त्यां समुत्पन्नः कर्णः कन्याप्रसंगतः"।

॥ हरि० ४५-३७ ॥

और फिर बाद में उसी से विवाह हुआ, जिससे युधिष्ठिर अर्जुन और भीम उत्पन्न होकर मोक्ष गये।

१२–चाण्डाल का उद्धार—एक चाण्डाल जैनधर्म को उपदेश सुनकर संसार से विरक्त हो गया और दीनता को छोड़कर चारों प्रकार के आहारों का परित्याग करके व्रती हो गया। वही मरकर नन्दीश्वर द्वीप में देव हुआ। यथा—

निर्वेदी दीनतां त्यक्त्वा त्यक्ताहारश्चतुर्विधं
मासेन श्वपचो मृत्वा भूत्वा नन्दीश्वरोऽमरः ॥

॥ हरि० ४३-१५५ ॥

इस प्रकार एक चाण्डाल अपनी दीनता को (कि मैं नीच हूं) छोड़ कर व्रती बन जाता है और देव होता है। ऐसी पतितोद्धारक उदारता और कहां मिलेगी ?

१३–शिकारी मुनि होगया—जंगल में शिकार खेलता हुआ और मृग का बध करके आया हुआ एक राजा मुनिराज के उपदेश से खून भरे हाथों को धोकर तुरन्त मुनि हो जाता है।

१४–भील के श्रावक व्रत—महावीर स्वामी का जीव जब भील था तब मुनिराज के उपदेश से श्रावक के व्रत लेलिये थे और

क्रमशः विशुद्ध होता हुआ महावीर स्वामी की पर्याय में आया। इन उदाहरणों से जैनधर्म की उदारता का कुछ ज्ञान हो सकता है। यह बात दूसरी है कि वर्तमान जैन समाज इस उदारता का उपयोग नहीं कर रही है। इसीलिए उसकी दिनोंदिन अवनति हो रही है। यदि जैन समाज पुनः अपने उदार धर्म पर विचार करे तो जैनधर्म का समस्त जगत में अद्भुत प्रभाव जम सकता है।

नोट—विशेष उदाहरण परिशिष्ट भाग में देखिये।

जैनधर्म में शूद्रों के अधिकार।

इस पुस्तक में अभी तक ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा चुके हैं जिन से ज्ञात हुआ होगा कि घोर से घोर पापी, नीच से नीच आचरण वाले और चांडालादिक दीन हीन शूद्र भी जैनधर्म की शरण लेकर पवित्र हुये हैं। जैनधर्म में सब को पचाने की शक्ति है। जहां पर वर्ण की अपेक्षा सदाचार को विशेष महत्व दिया गया है वहां ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रादिक का पक्षपात भी कैसे हो सकता है? इसी लिए कहना होगा कि जैनधर्म में शूद्रों को भी वही अधिकार हैं जो ब्राह्मणादि को हो सकते हैं शूद्र जिन मन्दिर में जा सकते हैं, जिन पूजा कर सकते हैं, जिन बिम्ब का स्पर्श कर सकते हैं, उत्कृष्ट श्रावक तथा मुनि के व्रत ले सकते हैं। नीचे लिखी कुछ कथाओं से यह बात विशेष स्पष्ट हो जाती है। इन बातों से व्यर्थ ही न भड़क कर इन शास्त्रीय प्रमाणों पर विचार करिये।

(१) श्रेणिक चरित्र में तीन शूद्र कन्याओं का विस्तार से वर्णन है उनके घर में मुर्गियां पाली जाती थीं। वे तीनों नीच कुल में उत्पन्न हुई थीं और उनका रहन सहन, आकृति आदि बहुत ही खराब थी। एक बार वे मुनिराज के पास पहुंची और उनके उपदेश से प्रभावित हो, अपने उद्धार का मार्ग पूछा। मुनिराज ने उन्हें लब्धि

विधान व्रत करने को कहा। इस व्रतमें भगवान जिनेन्द्र की प्रतिमा का प्रक्षाल-पूजादि, मुनि और श्रावकों को दान तथा अनेक धार्मिक विधियां (उपवासादि) करनी पड़ती हैं। उन कन्याओं ने यह सब शुद्ध अन्तःकरण से स्वीकार किया। यथा—

तिस्रोपि तद्व्रतं चक्रुरुद्यापनक्रियायुतम्।
मुनिराजोपदेशेन श्रावकाणां सहायतः॥ ५७॥
श्रावकव्रतसंयुक्ता बभूवुस्ताश्च कन्यकाः
क्षमादिव्रतसंकीर्णाः शीलांगपरिभूषिताः॥ ५८॥
कियत्काले गते कन्या आसाद्य जिनमन्दिरम्।
सपर्या महता चक्रुर्मनोवाक्कायशुद्धितः॥ ५९॥
ततः आयुक्षये कन्याः कृत्वा समाधिपंचताम्।
अर्हद्वीजाक्षरं स्मृत्वा गुरुपादं प्रणम्य च॥ ६०॥
पंचमे दिवि संजाता महादेवा स्फुरत्प्रभाः।
संछित्वा रमणीलिंगं सानंदयौवनान्विताः॥ ६१॥

—गौतमचरित्र तीसरा अधिकार।

अर्थात्—उन तीनों शूद्र कन्याओं ने मुनिराज के उपदेशानुसार श्रावकों की सहायता से उद्यापन क्रिया सहित लब्धिविधान व्रत किया। तथा उन कन्याओं ने श्रावक के व्रत धारण करके क्षमादि दश धर्म और शीलव्रत धारण किया। कुछ समय बाद उन शूद्र कन्याओं ने जिन मन्दिर में जाकर मन वचन काय की शुद्धता-पूर्वक जिनेन्द्र भगवान की बड़ी पूजा की। फिर आयु पूर्ण होने पर वे कन्यायें समाधिमरण धारण करके अर्हन्त देव के बीजाक्षरों को स्मरण करती हुई और मुनिराज के चरणों को नमस्कार करके स्त्रीपर्याय छेद कर पांचवें स्वर्ग में देव हुईं।

इस कथा भाग से जैनधर्म की उदारता अधिक स्पष्ट हो जाती है। जहां आज के दुराग्रही लोग स्त्री मात्र को पूजा प्रक्षाल का अनधिकारी बतलाते हैं वहां मुर्गा मुर्गियों को पालने वाली शूद्र जाति की कन्यायें जिनमन्दिर में जाकर महा पूजा करती हैं और अपना भव सुधार कर देव हो जाती हैं। शूद्रों की कन्याओं का समाधिमरण धारण करना, बीजाक्षरों का जाप करना आदि भी जैनधर्म की उदारता को उद्घोषित करता है।

इसके अतिरिक्त एक ग्वाला के द्वारा जिन पूजा का विधान बताने वाली भी ११३ वीं कथा आराधना कथाकोश में है। उस का भाव इस प्रकार है—

(२) धनदत्त नामक एक ग्वाला को गायें चराते समय एक तालाबमें सुन्दर कमल मिल गया। ग्वाला ने जिनमन्दिर में जाकर राजा के द्वारा सुगुप्त मुनि से पूछा कि सर्व श्रेष्ठ व्यक्ति को यह कमल चढ़ाना है। आप बताइये कि संसार में सर्व श्रेष्ठ कौन है? मुनिराज ने जिन भगवान को सर्व श्रेष्ठ बतलाया, तदनुसार धनदत्त ग्वाला राजा और नागरिकों के साथ जिनमन्दिर में गया और जिनेन्द्र भगवान की मूर्ति (चरणों) पर वह कमल ग्वाला ने अपने हाथों से भक्ति पूर्वक चढ़ा दिया। यथा —

> तदा गोपालकः सोऽपि स्थित्वा श्रीमज्जिनाग्रतः।
> भो सर्वोत्कृष्ट ते पद्म गृहाणेदमिति स्फुटम् ॥१५॥
> उक्त्वा जिनेन्द्रपादाब्जो परिक्षिप्त्वा सुपंकजम्।
> गतो मुग्धजनानां च भवेत्सत्कर्म शर्मदम् ॥१६॥

इस प्रकार एक शूद्र ग्वाला के द्वारा जिन प्रतिमा के चरणों पर कमल का चढ़ाया जाना शूद्रों के पूजाधिकार को स्पष्ट सूचित

करता है। ग्रन्थकार ने भी ऐसे मुग्धजनों के इस कार्य को सुख-कारी बतलाया है।

इसी प्रकार और भी अनेक कथायें शास्त्रों में भरी पड़ी हैं जिन में शूद्रों को वही अधिकार दिये गये हैं जो कि अन्य वर्णों को हैं। (३) सोमदत्त माली प्रति दिन जिनेन्द्र भगवान को पूजा करता था। चम्पानगर का एक ग्वाला मुनिराज से णमोकार मन्त्र सीख कर स्वर्ग गया। (४) अनंगसेना वेश्या अपने प्रेमी धनकीर्ति सेठ के मुनि हो जाने पर स्वयं भी दीक्षित हो गई और स्वर्ग गई। (५) एक ढीमर (कहार) की पुत्री प्रियंगुलता सम्यक्त्व में दृढ़ थी। उसने एक साधु के पाखण्ड की धज्जियां उड़ादी और उसे भी जैन बनाया था। (६) काणा नाम की ढीमर की लड़की की क्षुल्लिका होने की कथा तो हम पहिलेही लिख आये हैं (७) देविल कुम्हार ने एक धर्मशाला बनवाई, वह जैनधर्मका श्रद्धानी था। अपनी धर्मशाला में दिगम्बर मुनिराज को ठहराया। और पुण्य के प्रताप से वह देव होगया। (८) चामेक वेश्या जैनधर्मकी परम उपासिका थी। उसने जिन भवन को दान दिया था। उसमें शूद्र जाति के मुनि भी ठहरते थे। (९) तेली जति की एक महिला मानकव्वे जैनधर्म पर श्रद्धा रखती थी, आर्यिका श्रीमति की वह पट्ट शिष्या थी। उसने एक जिन मन्दिर भी बनवाया था।

इन उदाहरणों से शूद्रों के अधिकारों का कुछ भास हो सकता है। श्वेताम्बर जैन शास्त्रों के अनुसार तो चाण्डाल जैसे अस्पृश्य कहे जाने वाले शूद्रों को भी दीक्षा देने का वर्णन है। (१०) चित्त और संभूति नामक चाण्डाल पत्र जब वैदिकों के तिरस्कार से दुखी होकर आत्मघात करना चाहते थे तब उन्हें जैन दीक्षा सहायक हुई और जैनों ने उन्हें अपनाया। (११) हरिकेशी चाण्डाल भी जब

वैदिकों के द्वारा तिरस्कृत हुआ तब उसने जैनधर्म की शरण ली और जैन दीक्षा लेकर असाधारण महात्मा बन गया।

इस प्रकार जिस जैनधर्म ने वैदिकों के अत्याचार से पीड़ित प्राणियों को शरण देकर पवित्र बनाया, उन्हें उच्च स्थान दिया और जाति मद का मर्दन किया, वही पतित पावन जैनधर्म वर्तमान के स्वार्थी, संकुचित दृष्टि एवं जाति मदमत्त जैनों के हाथों में आकर बदनाम हो रहा है। खेद है कि हम प्रति दिन शास्त्रों की स्वाध्याय करते हुये भी उनकी कथाओं पर, सिद्धान्त पर, अथवा अन्तरंग दृष्टि पर ध्यान नहीं देते हैं। ऐसी स्वाध्याय किस काम की? और ऐसा धर्मात्मापना किस काम का? जहां उदारता से विचार न किया जाय।

जैनाचार्यों ने प्रत्येक शूद्र की शुद्धि के लिये तीन बातें मुख्य बताई हैं। १–मांस मदिरादि त्याग करके शुद्ध आचारवान हो, २–आसन वसन पवित्र हो, ३–और स्नानादि से शरीर की शुद्धि हो। इसी बात को श्रीसोमदेवाचार्य ने 'नीतिवाक्यामृत' में इस प्रकार कहा है—

"आचारानवद्यत्वंशुचिरुपस्कारः शरीरशुद्धिश्च करोति शूद्रानपि देवद्विजातितपस्विपरिकर्मसु योग्यान्।"

इस प्रकार तीन तरह की शुद्धियां होने पर शूद्र भी साधु होने तक के योग्य हो जाताहै। आशाधरजी ने लिखा है कि—

"जात्या हीनोऽपि कालादिलब्धौ ह्यात्मास्ति धर्मभाक्।"

अर्थात् जाति से ही या नीच होने पर भी कालादिक लब्धि-समयानुकूलता मिलने पर वह जैनधर्म का अधिकारी होजाता है। समन्तभद्राचार्य के कथनानुसार तो सम्यग्दृष्टि चाण्डाल भी देव

माना गया है, पूज्य माना गया है और गणधरादि द्वारा प्रशंनीय कहा गया है। यथा—

सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातंगदेहजम्।
देवा देवं विदुर्भस्मगूढ़ागारान्तरौजसम् ॥२८॥

—रत्नकरण्ड श्रावकाचार।

शूद्रों की तो बात ही क्या है जैन शास्त्रों में महा म्लेच्छों तक को मुनि होने का अधिकार दिया गया। जो मुनि हो सकता है उसके फिर कौन से अधिकार बाकी रह सकते हैं? लब्धिसार में म्लेच्छ को भी मुनि होने का विधान इस प्रकार किया है—

तत्तो पडिवज्जगया अज्जमिलेच्छे मिलेच्छ अज्जेय।
कमसो अवरं अवरं वरं वरं होदि संखं वा ॥१९३॥

अर्थ-प्रतिपाद्य स्थानों में से प्रथम आर्यखण्ड का मनुष्य मिथ्यादृष्टि से संयमी हुआ, उसके जघन्य स्थान है। उसके बाद असंख्यात लोक मात्र षट् स्थान के ऊपर म्लेच्छ खण्ड का मनुष्य मिथ्यादृष्टि से सकल सयमी (मुनि) हुआ, उसका जघन्य स्थान है। उसके ऊपर म्लेच्छ खण्ड का मनुष्य देश संयत से सकल संयमी हुआ, उसका उत्कृष्ट स्थान है। उसके बाद आर्य खण्ड का मनुष्य देश संयत से सकल संयमी हुआ उसका उत्कृष्ट स्थान है।

लब्धिसार की इसी १९३ वीं गाथा की संस्कृत टीका इस प्रकार है—

"म्लेच्छभूमिजमनुष्याणां सकलसंयमग्रहणं कथं भवतीति नाशंकितव्यं। दिग्विजयकाले चक्रवर्तिना सह आर्यखण्डमागतानां म्लेच्छराजानां चक्रवर्त्यादिभिः सह जातवैवाहिक संबंधानां संयमप्रतिपत्तेरविरोधात्। अथवा चक्र-

वर्त्यादिपरिणीतानां गर्भेषूत्पन्नस्य मातृपक्षापेक्षया म्लेच्छ-व्यपदेशभाजः संयमसंभवात्। तथा जातीयकानां दीक्षा-र्हत्वे प्रतिषेधाभावात्।"

अर्थात्—कोई यों कह सकता है कि म्लेच्छ भूमिज मनुष्य मुनि कैसे हो सकते हैं? यह शंका ठीक नहीं है, कारण कि दिग्विजय के समय चक्रवर्ती के साथ आर्य खण्ड में आये हुये म्लेच्छ राजाओं को संयम की प्राप्ति में कोई विरोध नहीं हो सकता। तात्पर्य यह है कि वे म्लेच्छ भूमि से आर्यखण्ड में आकर चक्रवर्ती आदि से संबंधित होकर मुनि बन सकते हैं। दूसरी बात यह है कि चक्रवर्ती के द्वारा विवाही गई म्लेच्छ कन्या से उत्पन्न हुई संतान माता की अपेक्षा से म्लेच्छ कही जा सकती है, और उस के मुनि होने में किसी भी प्रकार से कोई निषेध नहीं हो सकता।

इसी बात को सिद्धान्तराज श्रीजयधवल ग्रंथ में भी इस प्रकार से लिखा है—

"जइ एवं कुदो तत्थ संजमग्गहणसंभवोत्तिणा संक-णिज्जं। दिसाविजयपयट्टचक्कवट्टिखंधावारेण सहमज्झिम-खण्डमागयाणं मिलेच्छरायाणं तत्थ चक्कवट्टि आदिहिं सह जादवेवाहियसंबंधाणं संजमपडिवत्तीए विरोहाभावादो। अहवा तत्कन्यकानां चक्रवर्त्यादि परिणीतानांगर्भेषूत्पन्ना मातृपक्षापेक्षया स्वयमकर्मभूमिजा इतीहविवक्षिताः ततो न किंचिद्विप्रतिषिद्धं। तथाजातीयकानां दीक्षार्हत्वे प्रतिषेधा-भावादिति।" —जयधवल, आराकी प्रति पृ० ८२७–२८

(देखिये मुख्तार सा० कृत भगवान महावीर और उनका समय)

इन टीकाओं से दो बातों का स्पष्टीकरण होता है। एक तो म्लेच्छ लोग मुनि दीक्षा तक ले सकते हैं और दूसरे म्लेच्छ कन्या से विवाह करने पर भी कोई धर्म कर्म की हानि नहीं हो सकती, प्रत्युत उस म्लेच्छ कन्या से उत्पन्न हुई संतान भी उतनी ही धर्मादि की अधिकारिणी होती है जितनी कि सजातीय कन्या से उत्पन्न हुई सन्तान।

प्रवचनसार की जयसेनाचार्य कृत टीका में भी सत् शूद्र को जिन दीक्षा लेने का स्पष्ट विधान है। यथा—

"एवंगुणविशिष्ट पुरुषो जिनदीक्षाग्रहणे योग्यो भवति। यथायोग्यं सच्छूद्राद्यपि"

और भी इसी प्रकार के अनेक कथन जैन शास्त्रों में पाये जाते हैं जो जैनधर्म की उदारता के द्योतक हैं। प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक दशा में धर्म सेवन करने का अधिकार है। 'हरिवंशपुराण' के २६वें सर्ग के श्लोक १४ से २२ तक का वर्णन देखकर पाठकों को ज्ञात हो जायगा कि जैनधर्म ने कैसे कैसे अस्पृश्य शूद्र समान व्यक्तियों को जिन मन्दिर में जाकर धर्म कमाने का अधिकार दिया है। वह कथन इस प्रकार है कि वसुदेव अपनी प्रियतमा मदनवेगा के साथ सिद्धकूट चैत्यालय की वंदना करने गये। वहाँ पर चित्र विचित्र वेषधारी लोगों को बैठा देखकर कुमार ने रानी मदनवेगा से उन की जाति जानने बाबत कहा। तब मदनवेगा बोली—

मैं इनमें से इन मातंग जाति के विद्याधरों का वर्णन करती हूँ नील मेघ के समान श्याम नीली माला धारण किये मातंगस्तंभ के सहारे बैठे हुये ये मातंग जाति के विद्याधर हैं॥ १५॥ मुर्दों की हड्डियों के भूषणों से युक्त राख के लपेटने से भद मैले स्मशान

स्तंभ के सहारे बैठे हुये वह श्मशान जाति के विद्याधर हैं ॥१६॥
वैडूर्य मणि के समान नीले नीले वस्त्रों को धारण किये पाण्डुर स्तंभ के सहारे बैठे हुये पाण्डुक जाति के विद्याधर हैं ॥ १७ ॥
काले काले मृग चर्मों को ओढे, काले चमड़े के वस्त्र और मालाओं को धारे काल स्तंभ का आश्रय लेकर बैठे हुए ये कालश्वपा जाति के विद्याधर हैं ॥ १८ ॥ इत्यादि

इससे क्या सिद्ध होता है ? यही न कि रुंड मुंड को गले में डाले हुये, हड्डियों के आभूषण पहिने हुये और चमड़े के वस्त्र चढ़ाये हुये लोग भी सिद्धकूट जिन चैत्यालय के दर्शन करते थे ? मगर विचार तो करिये कि आज जैनों ने उस उदारता का कितनी निर्दयता से विनाश किया है। यदि वर्तमान में जैनधर्म की उदारता से काम लिया जाय तो जैनधर्म विश्वधर्म हो जाय और समस्त विश्व जैनधर्मी हो जाय।

स्त्रियों के अधिकार।

जैनधर्म की सब से बड़ी उदारता यह है कि पुरुषों की भांति स्त्रियों को भी तमाम धार्मिक अधिकार दिये गये हैं। जिस प्रकार पुरुष पूजा प्रक्षाल कर सकता है उसी प्रकार स्त्रियां भी कर सकती हैं। यदि पुरुष श्रावक के उच्च व्रतों को पाल सकता है तो स्त्रियां भी उच्च श्राविका हो सकती हैं। यदि पुरुष ऊंचे से ऊंचे धर्मग्रन्थों के पाठी हो सकते हैं तो स्त्रियों को भी यही अधिकार हैं। यदि पुरुष मुनि हो सकता है तो स्त्रियां भी आर्यिका होकर पंच महाव्रत पालन करती हैं।

धार्मिक अधिकारों की भांति सामाजिक अधिकार भी स्त्रियों के लिये समान ही हैं यह बात दूसरी है कि वैदिक धर्म आदि के प्रभाव से जैनसमाज अपने कर्तव्य को और धर्म की आज्ञाओं

को भूलकर विपरीत मार्ग को भी धर्म समझ रही हो। जैसे सम्पत्ति का अधिकारी पुत्र तो होता है किन्तु पुत्रियों को उसका अधिकारी नहीं माना जाता है। ऐसा क्यों होता है? क्या पुत्र की भांति पुत्री को माता ६ माह पेट में नहीं रखती? क्या पुत्र के समान पुत्री के जनने में कष्ट नहीं सहती? क्या पुत्र की भांति पुत्री के पालन पोषण में तकलीफें नहीं होतीं? बतलाइये तो सही कि पुत्रियां क्यों न पुत्रों के समान सम्पत्ति की अधिकारणी हों। हमारे जैन शास्त्रों ने तो इस संबंध में पूरी उदारता बताते हुए स्पष्ट लिखा है कि—

"पुत्र्यश्च संविभागार्हाः समं पुत्रैः समांशकैः" ॥१५४॥

—आदिपुराण पर्व ३८।

अर्थात्—पुत्रों की भांति पुत्रियों को भी बराबर भाग बांट कर देना चाहिये॥

इसी प्रकार जैन कानून के अनुसार स्त्रियों को, विधवाओं को या कन्याओं को पुरुष के समान ही सब प्रकार के अधिकार हैं। इसके लिये विद्यावारिधि जैन दर्शन दिवाकर पं० चंपतरायजी जैन बैरिस्टर कृत 'जैनलॉ' नामक ग्रन्थ देखना चाहिये।

जैन शास्त्रों में स्त्री सन्मान के भी अनेक कथन पाये जाते हैं। जब कि मूढ़ जनता स्त्रियों को पैर की जूती या दासी समझती है तब जैन राजा महाराजा अपनी रानियों का [illegible] कर सन्मान करते थे और अपना अर्धासन बैठने को देते थे। भगवान् महावीर स्वामी की माता महारानी प्रियकारिणी जब अपने स्वप्नों का फल पूछने महाराजा सिद्धार्थ के पास गई तब महाराजा ने अपनी धर्मपत्नी को आधा आसन दिया और महारानी ने उस पर बैठ कर अपने स्वप्नों का वर्णन किया। यथा—

"संप्राप्तार्द्धासना स्वप्नान् यथाक्रममुदाहरत् ॥"

—उत्तरपुराण।

इसी प्रकार महारानियों का राजसभाओं में जाने और वहां पर सन्मान प्राप्त करने के अनेक उदाहरण जैन शास्त्रों में भरे पड़े हैं। जब कि वेद आदि स्त्रियों को धर्म ग्रन्थों के अध्ययन करने का निषेध करते हुये लिखते हैं कि "स्त्रीशूद्रौनाधीयाताम्" तब जैनग्रंथ स्त्रियों को ग्यारह अंग की धारी होना बताते हैं। यथा—

द्वादशांगधरो जातः क्षिप्रं मेघेश्वरो गणी।
एकादशांगभृज्जाताऽऽर्यिकाऽपि सुलोचना ॥ ५२ ॥

हरिवंशपुराण सर्ग १२।

अर्थात्—जयकुमार भ[illegible] द्वादशांगधारी गणधर हुआ और सुलोचना ग्यारह अंग [illegible] धारक आर्यिका हुई।

इसी प्रकार स्त्रियां सिद्धान्त ग्रंथों के अध्ययन के साथ ही जिन प्रतिमा का पूजा प्रक्षाल भी किया करती थीं। अंजना सुन्दरी ने अपनी सखी वसन्तमाला के साथ वन में रहते हुये गुफा में विराजमान जिनमूर्ति का पूजन प्र[illegible]ाल किया था। मदनवेगा ने वसुदेव के साथ सिद्धकूट चैत्यालय में जिन पूजा की थी। मैना-सुन्दरी तो प्रति दिन प्रतिमा का प्र[illegible]ाल करती थी और अपने पति श्रीपाल राजा को गंधोदक लगाती थी। इसी प्रकार स्त्रियों [illegible]ारा पूजा प्रक्षाल किये जाने के अनेक उदाहरण मिल सकते हैं।

हर्ष का विषय है कि आज भी जैन समाज में स्त्रियां पूजन प्रक्षाल करती हैं, मगर खेद है कि अब भी कुछ हठग्राही लोग स्त्रियों को इस धर्म कृत्य का अनधिकारी समझते हैं। ऐसी अविचारित बुद्धि पर दया आती है। कारण कि जो स्त्री आर्यिका होने का अधिकार रखती है वह पूजा प्रक्षाल न कर सके यह विचित्रता की बात है। पूजा प्रक्षाल तो आरंभ होने के कारण कर्म बंध का निमित्त है, इस से तो संसार (स्वर्ग आदि) में ही चक्कर लगाना

पड़ता है जब कि आर्यिका होना संवर और निर्जरा का कारण है जिससे क्रमशः मोक्ष की प्राप्ति होती है। तब विचार करिये कि एक स्त्री मोक्ष के कारणभूत संवर निर्जरा करने वाले कार्य तो कर सके और संसार के कारणभूत बंध कर्ता पूजन प्रक्षाल आदि न कर सके, यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है ?

यदि सच पूछा जाय तो जैनधर्म सदा से उदार रहा है, उसे स्त्री पुरुष या ब्राह्मण शूद्र का कोई पक्षपात नहीं था। हां, कुछ ऐसे दुराग्रही पापात्मा हो गये हैं जिन्होंने ऐसे पक्षपाती कथन कर के जैनधर्म को कलंकित किया है। इसी से खेद खिन्न होकर आचार्य कल्प पंडित प्रवर टोडरमलजी ने लिखा है कि—

"बहुरि केई पापी पुरुषां अपना कल्पित कथन किया है। अर तिनकौं जिन वचन ठहरावे हैं। तिनकौं जैनमत का शास्त्र जानि प्रमाण न करना। तहां भी प्रमाणादिक तैं परीक्षा करि विरुद्ध अर्थ को मिथ्या जानना।"

—मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० ३०७ ॥

तात्पर्य यह है कि जिन ग्रन्थोंमें जैनधर्म की उदारता के विरुद्ध कथन है वह जैन ग्रंथ कहे जाने पर भी मिथ्या मानना चाहिये। कारण कि कितने ही पक्षपाती लोग अन्य संस्कृतियों से प्रभावित होकर स्त्रियों के अधिकारों को तथा जैनधर्म की उदारता को कुचलते हुये भी अपने को निष्पक्ष मानकर ग्रंथकार बन बैठे हैं। जहां शूद्र कन्यायें भी जिन पूजा और प्रतिमा प्रक्षाल कर सकती हैं (देखो गौतमचरित्र तीसरा अधिकार) वहां स्त्रियों को पूजाप्रक्षाल का अनधिकारी बताना महा मूढ़ता नहीं तो और क्या है। स्त्रियां पूजा प्रक्षाल ही नहीं करती थी किन्तु मुनि दान भी देती थी और अब भी देती हैं। यथा—

श्रीजिनेन्द्रपदांभोजसपर्यायां सुमानसा।
शचीव सा तदा जाता जैनधर्मपरायणा ॥८६॥
ज्ञानधनाय कांताय शुद्धचारित्रधारिणे।
मुनीन्द्राय शुभाहारं ददौ पापविनाशनम् ॥८७॥

—गौतमचरित्र तीसरा अधिकार॥

अर्थात्—स्थंडिला नाम की ब्राह्मणी जिन भगवान की पूजा में अपना चित्त लगाती थी और इन्द्राणी के समान जैनधर्म में तत्पर होगई थी। उस समय वह ब्राह्मणी सम्यग्ज्ञानी शुद्ध चरित्र-धारी उत्तम मुनियों को पापनाशक शुभ आहार देती थी।

इसी प्रकार स्त्रियों की धार्मिक स्वतंत्रता के अनेक उदाहरण मिलते हैं। जहां तुलसीदासजी ने लिख मारा है कि—

ढोर गंवार शूद्र अरु नारी।
ये सब ताड़न के अधिकारी॥

वहां जैनधर्म ने स्त्रियों की प्रतिष्ठा करना बताया है, सन्मान करना सिखाया है और उन्हें समान अधिकार दिये हैं। जहां वेदों में स्त्रियों को पढ़ाने की आज्ञा नहीं है वहां जैनियों के प्रथम तीर्थंकर भगवान् आदिनाथ ने स्वयं अपनी ब्राह्मी और सुन्दरी नामक पुत्रियों को पढ़ाया था। उन्हें स्त्री जाति के प्रति बहुत सन्मान था। पुत्रियों को पढ़ाने के लिये वे इस प्रकार उपदेश करते हैं कि—

इदं वपुर्वयश्चेदमिदं शीलमनीदृशं।
विद्यया चेद्विभूष्येत सफलं जन्म वामिदं ॥ ९७ ॥
विद्यवान् पुरुषो लोके सम्मतिं याति कोविदैः।
नारी च तद्वती धत्ते स्त्रीसृष्टेरग्रिमं पदं ॥ ९८ ॥

तद्विद्या ग्रहणे यत्नं पुत्रिके कुरुतं युवां ।
तत्संग्रहणकालोऽयं युवयोर्वर्त्ततेऽधुना ॥ १०२ ॥

आदिपुराण पर्व १६ ॥

अर्थात्—पुत्रियो ! यदि तुम्हारा यह शरीर अवस्था और अनुपम शील विद्या से विभूषित किया जावे तो तुम दोनों का जन्म सफल हो सकता है। संसार में विद्यावान् पुरुष विद्वानों के द्वारा मान्य होता है। अगर नारी पढ़ी लिखी विद्यावती हो तो वह स्त्रियों में प्रधान गिनी जाती है। इस लिये पुत्रियो ! तुम भी विद्या ग्रहण करने का प्रयत्न करो। तुम दोनों को विद्या ग्रहण करने का यही समय है।

इस प्रकार स्त्री शिक्षा के प्रति सद्भाव रखने वाले भगवान् आदिनाथ ने विधिपूर्वक स्वयं ही पुत्रियों को पढ़ाना प्रारंभ किया। इस संबंध में विशेष वर्णन आदिपुराण के इसी प्रकरण से ज्ञात होगा। इससे मालूम होगा कि इस युग के सृष्टा भगवान् आदिनाथ स्वामी स्त्री शिक्षा के प्रचारक थे। उन्हें स्त्रियों के उत्थान की चिंता थी और वे स्त्रियों को समानाधिकारिणी मानते थे।

मगर खेद है कि उन्हीं के अनुयायी कहे जाने वाले कुछ स्वार्थियों ने स्त्रियों को विद्याध्ययन, पूजा प्रक्षाल आदि का अनधिकारी बताकर स्त्री जाति के प्रति घोर अन्याय किया है। स्त्री जाति के अशिक्षित रहने से सारे समाज और देश का जो भारी नुकसान हुवा है वह अवर्णनीय है। स्त्रियों को मूर्ख रख कर स्वार्थी पुरुषों ने उनके साथ पशु तुल्य व्यवहार करना प्रारंभ कर दिया और मन माने ग्रंथ बनाकर उनकी भर पेट निन्दा कर डाली। एक स्थान पर नारी निन्दा करते हुये एक विद्वान ने लिखा है कि—

आपदामकरो नारी नारी नरकवर्तिनी ।
विनाशकारणं नारी नारी प्रत्यक्षराक्षसी ॥

इस विद्वेष, पक्षपात और नीचता का क्या कोई ठिकाना है ? जिस प्रकार स्वार्थी पुरुष स्त्रियों के निन्दा सूचक श्लोक रच सकते हैं उसी प्रकार स्त्रियां भी यदि विदुषी होकर ग्रंथ रचना करती तो वे भी यों लिख सकती थीं कि—

पुरुषो विपदां खानिः पुमान् नरकपद्धतिः ।
पुरुषः पापानां मूलं पुमान् प्रत्यक्ष राक्षसः ॥

कुछ जैन ग्रन्थकारों ने तो पीछे से न जाने स्त्रियों के प्रति क्या क्या लिख मारा है । कहीं उन्हें विष बेल लिखा है तो कहीं जहरीली नागिन लिख मारा है । कहीं विष बुझी कटारी लिखा है तो कहीं दुर्गुणों की खान लिख दिया है । इस प्रकार लिख लिख कर पक्षपात से प्रज्वलित अपने कलेजों को ठंडा किया है । मानो इसी के उत्तर स्वरूप एक वर्तमान कवि ने बड़ी ही सुन्दर कविता में लिखा है कि—

वीर, बुद्ध अरु राम कृष्ण से अनुपम ज्ञानी ।
तिलक, गोखले, गांधी से अद्भुत गुण खानी ॥
पुरुष जाति है गर्व कर रही जिन के ऊपर ।
नारि जाति थी प्रथम शिक्षिका उनकी भूपर ॥
पकड़ पकड़ उंगली हमने चलना सिखलाया ।
मधुर बोलना और प्रेम करना सिखलाया ॥
राजपूतिनी वेष धार मरना सिखलाया ।
व्याप्त हमारी हुई स्वर्ग अरु भू पर माया ॥
पुरुष वर्ग खेला गोदी में सतत हमारी ।

भले बना हो सम्प्रति हम पर अत्याचारी ॥
किन्तु यही सन्तोष हटीं नहिं हम निज प्रण से।
पुरुष जाति क्या उऋण हो सकेगी इस ऋण से ॥

भगवान् महावीर स्वामी के शासन में महिलाओं के लिये बहुत उच्च स्थान है। महावीर स्वामी ने स्वयं अनेक महिलाओं का उद्धार किया है। चन्दना सती को एक विद्याधर उठा ले गया था, वहां से वह भीलों के पंजे में फँस गई। जब वह जैसे तैसे छूट कर आई तब स्वार्थी समाज ने उसे शंका की दृष्टि से देखा। एक जगह उसे दासी के स्थान पर दीनता पूर्ण स्थान मिला। उसे सब तिरस्कृत करते थे तब भगवान् महावीर वामी ने उसके हाथ से आहार ग्रहण किया और वह भगवान महावीर के संघ में सर्वश्रेष्ठ आर्यिका हो गई। तात्पर्य यह है कि जैन धर्म में महिलाओं को उतना ही उच्च स्थान है जितना कि पुरुषों को। यह बात दूसरी है कि जैन समाज आज अपने उत्तरदायित्व को भूल रहा है।

वैवाहिक उदारता।

जैनधर्म की सब से अधिक प्रशंसनीय एवं अनुकूल उदारता तो विवाह संबंधी है। यहां वर्णादि का विचार न कर के गुणवान वर कन्या से संबंध करन की स्पष्ट आज्ञा है। हरिवंशपुराण की स्वाध्याय करनेसे मालूम होगा कि पहले विजातीय विवाह होते थे, असवर्ण विवाह होते थे, सगोत्र विवाह भी होते थे, स्वयंवर होता था, व्यभिचार जात-दस्सों से विवाह होते थे, म्लेच्छों से विवाह होते थे, वेश्याओं से विवाह होते थे, यहां तक कि कुटुम्ब में भी बिबाह हो जाते थे। फिर भी ऐसे विवाह करने वालों का न तो मंदिर बन्द होता था, न जाति विरादरी से वह खारिज किये जाते

थे और न उन्हें कोई घृणा की दृष्टि से देखता था * ।

मगर खेद है कि आज कुछ दुराग्रही लोग कल्पित उपजातियों खण्डेलवाल, परवार, गोलालारे, गोलापूर्व, अग्रवाल, पद्मावती पुरवाल, हूमड़ आदि में परस्पर विवाह करने से धर्म को बिगड़ता हुआ देखने लगते हैं।

जैन शास्त्रों में वैवाहिक उदारता के सैकड़ों स्पष्ट प्रमाण पाये जाते हैं। भगवज्जिनसेनाचार्य ने आदिपुराण में लिखा है कि—

शूद्रा शूद्रेण वौढव्या नान्या स्वां तां च नैगमः।
वहेत् स्वां ते च राजन्यः स्वां द्विजन्मा क्विचिच्चताः॥

अर्थात्—शूद्र को शूद्र की कन्या से विवाह करना चाहिये, वैश्य वैश्य की तथा शूद्र की कन्या से विवाह कर सकता है, क्षत्रिय अपने वर्ण की तथा वैश्य और शूद्र की कन्या से विवाह कर सकता है और ब्राह्मण अपने वर्ण की तथा शेष तीन वर्ण की कन्याओं से भी विवाह कर सकता है।

इतना स्पष्ट कथन होते हुए भी जो लोग कल्पित उपजातियों में (अन्तर्जातीय) विवाह करने में धर्म कर्म की हानि समझते हैं उनकी बुद्धि के लिये क्या कहा जाय ? अदीर्घदर्शी, अविचारी एवं हठग्राही लोगों को जाति के झूठे अभिमान के सामने आगम और युक्तियां व्यर्थ दिखाई देती हैं। जब कि लोगों ने जाति का हठ पकड़ रखा है तब जैन ग्रंथों ने जाति कल्पना की धज्जियां उड़ादी हैं। यथा—

* इस विषय को विस्तार पूर्वक एवं सप्रमाण जानने के लिये श्री० पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार लिखित 'विवाह क्षेत्र प्रकाश' देखने के लिये हम पाठकों से साग्रह अनुरोध करते हैं।

अनादाविह संसारे दुर्वारे मकरध्वजे।
कुले च कामनीमूले का जातिपरिकल्पना॥

अर्थात्—इस अनादि संसार में कामदेव सदा से दुर्निवार चला आ रहा है। तथा कुल का मूल कामनी है। तब इसके आधार पर जाति कल्पना करना कहां तक ठीक है? तात्पर्य यह है कि न जाने कब कौन किस प्रकार से कामदेव की चपेट में आ गया होगा। तब जाति या उसकी उच्चता नीचता का अभिमान करना व्यर्थ है। यही बात गुणभद्राचार्य ने उत्तरपुराण के पर्व ७४ में और भी स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार कही है—

वर्णाकृत्यादिभेदानां देहेऽस्मिन्न च दर्शनात्।
ब्राह्मण्यादिषु शूद्राद्यैर्गर्भाधानप्रवर्तनान्॥४६१॥

अर्थात् इस शरीर में वर्ण या आकार से कुछ भेद दिखाई नहीं देता है। तथा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों में शूद्रों के द्वारा भी गर्भाधान की प्रवृत्ति देखी जाती है। तब कोई भी व्यक्ति अपने उत्तम या उच्च वर्ण का अभिमान कैसे कर सकता है? तात्पर्य यह है कि जो वर्तमान में सदाचारी है वह उच्च है और जो दुराचारी है वह नीच है।

इस प्रकार जाति और वर्ण की कल्पना को महत्व न देकर जैनाचार्यों ने आचरण पर जोर दिया है। जैनधर्म की इस उदारता को ठोकर मार कर जो लोग अन्तर्जातीय विवाह का भी निषेध करते हैं उनकी दयनीय बुद्धि पर विचार न करके जैन समाज को अपना क्षेत्र विस्तृत, उदार एवं अनुकूल बनाना चाहिये।

जैन शास्त्रों को, कथा ग्रंथों को या प्रथमानुयोग को उठाकर देखिये, उनमें आपको पद २ पर वैवाहिक उदारता नजर आयेगी। पहले स्वयम्बर प्रथा चालू थी, उसमें जाति या कुल की परवाह न करके गुण का ही ध्यान रखा जाता था। जो कन्या किसी भी छोटे

या बड़े कुल वाले को उसके गुण पर मुग्ध होकर विवाह लेती थी उसे कोई बुरा नहीं कहता था। हरिवंश पुराण में इस सम्बन्ध में स्पष्ट लिखा है कि—

कन्या वृणीते रुचिरं स्वयंवरगता वरं।
कुलीनमकुलीनं वा क्रमो नास्ति स्वयम्बरे ॥११-७१॥

अर्थात्—स्वयम्बरगत कन्या अपने पसन्द वर को स्वीकार करती है, चाहे वह कुलीन हो या अकुलीन। कारण कि स्वयम्बर में कुलीनता अकुलीनता का कोई नियम नहीं होता है।

अब विचार करिये, कि जहां कुलीन अकुलीन का विचार न करके इतनी वैवाहिक उदारता बताई गई है वहां अन्तर्जातीय विवाह तो कौनसी बड़ी बात है। इसमें तो एक ही जाति, एक ही धर्म, और एक ही आचार विचार वालोंसे संबंध करना है। यह विश्वास रखिये कि जब तक वैवाहिक उदारता पुनः चालू नहीं होगी तबतक जैन समाज की उन्नति होना कठिन ही नहीं किन्तु असंभव है।

जैन शास्त्रों में विजातीय विवाह के प्रमाण।

१—राजा श्रेणिक (क्षत्रिय) ने ब्राह्मण कन्या नन्दश्रीसे विवाह किया था और उससे अभयकुमार पुत्र उत्पन्न हुवा था। (भवतो विप्रकन्यां सुतोऽभूदभयाह्वयः) बाद में विजातीय माता पिता से उत्पन्न अभयकुमार मोक्ष गया। (उत्तरपुराण पर्व ७४ श्लोक ४२३ से २६ तक)

२—राजा श्रेणिक (क्षत्रिय) ने अपनी पुत्री धन्यकुमार 'वैश्य' को दी थी। (पुण्याश्रव कथाकोष)

३—राजा जयसेन (क्षत्रिय) ने अपनी पुत्री पृथ्वीसुन्दरी प्रीतिंकर (वैश्य) को दी थी। इनके ३६ वैश्य पत्नियां थीं और

एक पत्नी राजकुमारी वसुन्धरा भी क्षत्रिया थी। फिर भी वे मोक्ष गये। (उत्तरपुराण पर्व ७६ श्लोक ३४६-४७)

४—कुवेरप्रिय सेठ (वैश्य) ने अपनी पुत्री क्षत्रिय कुमार को दी थी।

५—क्षत्रिय राजा लोकपाल की रानी वैश्य थी।

६—भविष्यदत्त (वैश्य) ने अरिंजय (क्षत्रिय) राजा की पुत्री भविष्यानुरूपासे विवाह किया था तथा हस्तिनापुरके राजा भूपाल की कन्या स्वरूपा (क्षत्रिया) को भी विवाहा था। (पुण्याश्रव कथा)

७—भगवान नेमिनाथ के काका वसुदेव (क्षत्रिय) ने म्लेच्छ कन्या जरासे विवाह किया था। उससे जरत्कुमार उत्पन्न होकर मोक्ष गया था। (हरिवंशपुराण)

८—चारुदत्त (वैश्य) की पुत्री गंधर्वसेना वसुदेव (क्षत्रिय) को विवाही थी। (हरि०)

९—उपाध्याय (ब्राह्मण) सुग्रीव और यशोग्रीव ने भी अपनी दो कन्यायें वसुदेव कुमार (क्षत्रिय) को विवाही थीं। (हरि०)

१०-ब्राह्मण कुलमें क्षत्रिय माता से उत्पन्न हुई कन्या सोमश्रीको वसुदेवने विवाहा था। (हरिवंशपुराण सर्ग २३ श्लोक ४९-५१)

११-सेठ कामदत्त 'वैश्य' ने अपनी पुत्री बंधुमती का विवाह वसुदेव क्षत्रिय से किया था। (हरि०)

१२-महाराजा उपश्रेणिक (क्षत्रिय) ने भील कन्या तिलकवती से विवाह किया और उससे उत्पन्न पुत्र चिलाती राज्याधिकारी हुआ। (श्रेणिकचरित्र)

१३-जयकुमार का सुलोचना से विवाह हुआ था। मगर इन दोनों की एक जाति नहीं थी।

१४-जीवंधर कुमार वैश्य पुत्र कहे जाते थे। उनने क्षत्रिय

विद्याधर गरुड़वेग की कन्या गंधर्वदत्ता को विवाहा था। (उत्तर पुराण पर्व ७५ श्लोक ३२०-४४)

जीवंधरकुमार वैश्य पुत्रके नामसे ही प्रसिद्ध थे। कारण कि वे जन्मकालसे ही वैश्य सेठ गंधोत्कटके यहां पले थे और उन्हींके पुत्र कहे जाते थे। विजातीय विवाह के विरोधियों का कहना है कि कुछ भी हो, मगर जीवंधरकुमार थे तो क्षत्रिय पुत्र ही। उन पण्डितों की इस बात को मानने में भी हमें कोई एतराज नहीं है। कारण कि फिर भी विजातीय विवाह की सिद्धि होती है। यथा—

जीवंधर कुमार क्षत्रिय थे, उनने वैश्रवणदत्त वैश्य की पुत्री सुरमंजरी से विवाह किया था। (उत्तर० पर्व ७५ श्लोक ३४७ और ३७२) इसी प्रकार कुमारदत्त वैश्य की कन्या गुणमाला का भी जीवंधर स्वामी के साथ विवाह हुआ था (उत्तर० पर्व ७५) इसके अतिरिक्त जीवंधर ने धनपति (क्षत्रिय) राजा की कन्या पद्मोत्तमा को विवाहा था। सागरदत्त सेठ वैश्य की लड़की विमला से विवाह किया था। (उत्तर० पर्व ७५ श्लोक ५८७) तात्पर्य यह है कि जीवधरको क्षत्रिय मानिये या वैश्य, दोनों हालत में उनका विजातीय विवाह होना सिद्ध है। फिर भी वे मोक्ष गये हैं।

१५-शालिभद्र सेठ ने विदेशमें जाकर अनेक विदेशीय एवं विजातीय कन्याओं से विवाह किया था।

१६—अग्निभूत स्वयं ब्राह्मण था, उसकी एक स्त्री ब्राह्मणी थी और एक वैश्य थी। यथा:—विप्रस्तवाग्निभूताख्यस्तस्यैका ब्राह्मणी प्रिया। परा वैश्यसुता, सूनुर्ब्राह्मण्यां शिवभूतिभाक्॥ दुहिता चित्रसेनाख्या विट्सुतायामजायत ॥

(उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ७१-७२)

१७—अग्निभूतकी वैश्य पत्नीसे चित्रसेना कन्या हुई और वह

देवशर्मा ब्राह्मणको विवाही गई। (उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ७३)

१८—तद्भव मोक्षगामी महाराजा भरतने ३२ हजार म्लेच्छ कन्याओंसे विवाह किया था। मगर उनका दरजा कम न हुआ था। जिन म्लेच्छ कन्याओंको भरत ने विवाहा था वे म्लेच्छ धर्म कर्म विहीन थे। यथा—

> **इत्युपायैरुपायज्ञः साधयन्म्लेच्छभूभुजः।**
> **तेभ्यः कन्यादिरत्नानि प्रभोर्भोग्यान्युपाहरत् ॥१४१॥**
> **धर्मकर्मबहिर्भूता इत्यमी म्लेच्छका मताः ॥१४२॥**
>
> —आदिपुराण पर्व ३१।

पाठको! विचार तो करिये। इन धर्म-कर्म विहीन म्लेच्छों से अपनी परस्परकी उपजातियां कुछ गई बीती तो नहीं हैं। तब फिर कमसे कम उपजातियोंमें परस्पर विवाह सम्बन्ध क्यों नहीं चालू कर देना चाहिये?

१९—श्रीकृष्णचन्द्रजीने अपने भाई गजकुमारका विवाह क्षत्रिय कन्याओंके अतिरिक्त सोमशर्मा ब्राह्मणकी पुत्री सोमासे भी किया था। (हरिवंशपुराण ब्र० जिनदास ३४-२६ तथा हरिवंशपुराण जिनसेनाचार्य कृत)

२०—मदनवेगा 'गौरिक' जातिकी थी। बसुदेवजीकी 'गौरिक' जाति नहीं थी। फिर भी इन दोनों का विवाह हुआ था। यह अन्तर्जातीय विवाह का अच्छा उदाहरण है। (हरिवंशपुराण जिनसेनाचार्य कृत)

२१—सिंहक नाम के वैश्य का विवाह एक कौशिक वंशीय क्षत्रिय कन्यासे हुआ था।

२२—जीवंधर कुमार वैश्य थे, फिर भी राजा गयेन्द्र (क्षत्रिय)

की कन्या रत्नवतीसे विवाह किया। (उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ६४६-५१)

२३—राजा धनपति (क्षत्रिय) की कन्या पद्माको जीवंधर कुमार [वैश्य] ने विवाहा था। (क्षत्रचूड़ामणि लम्ब ५ श्लोक ४२-४६)

२४—भगवान शान्तिनाथ (चक्रवर्ती) सोलहवें तीर्थंकर हुये हैं। उनकी कई हजार पत्नियां तो म्लेच्छ कन्यायें थी। (शान्तिनाथपुराण)

२५—गोपेन्द्र ग्वालाकी कन्या सेठ गन्धोत्कट (वैश्य) के पुत्र नन्दा के साथ विवाही गई। (उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ३००)

२६—नागकुमारने तो वेश्या पुत्रियोंसे भी विवाह किया था। फिर भी उनने दिगम्बर मुनिकी दीक्षा ग्रहण की थी। (नागकुमार चरित्र) इतना होनेपर भी वे जैनियोंके पूज्य रह सके। किन्तु दिगम्बर जैनोंकी वैश्य जातिमें ही परस्पर अन्तर्जातीय सम्बन्ध करनेमें जिन्हें सज्जातित्वका नाश और धर्मका अधिकारीपना दिखता है उनकी विचित्र बुद्धिपर दया आये बिना नहीं रहती है। इन शास्त्रीय उदाहरणोंसे विजातीय विवाहके विरोधियोंको अपनी आंखें खोलनी चहिये।

जैन शास्त्रोंमें जब इस प्रकारके सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं जिनमें विवाह सम्बन्धके लिये किसी वर्ण जाति या धर्म तक का विचार नहीं किया गया है और ऐसे विवाह करनेवाले स्वर्ग, मुक्ति और सद्गतिको प्राप्त हुये हैं तब एक ही वर्ण एक ही धर्म और एक ही प्रकारके जैनियोंमें पारस्परिक सम्बन्ध (अन्तर्जातीय विवाह) करनेमें कौनसी हानि है, यह समझमें नहीं आता।

इन शास्त्रीय प्रमाणोंके अतिरिक्त ऐसे ही अनेक ऐतिहासिक प्रमाण भी मिलते हैं। यथा—

१—सम्राट चन्द्रगुप्तने ग्रीक देशके (म्लेच्छ) राजा सैल्यूकस की कन्यासे विवाह किया था। और फिर भद्रबाहु स्वामीके निकट दिगम्बर मुनिदीक्षा लेली थी।

२—आबू मन्दिरके निर्माता तेजपाल प्राग्वाट (पोरवाल) जाति के थे, और उनकी पत्नी मोढ़ जाति की थी। फिर भी वे बड़े धर्मात्मा थे। २१ हजार श्वेताम्बरों और ३ सौ दिगम्बरों ने मिलकर उन्हें 'संघपति' पदसे विभूषित किया था। यह संवत् १२२० की बात है। तेजपालकी विजातीय पत्नी थी, फिर भी वह धर्मपत्नीके पदपर आरूढ़ थी। इस सम्बन्ध में आबूके जैन मन्दिरमें सम्बत् १२९७ का जो शिलालेख मिला है वह इस प्रकार है:—

"ॐ सम्वत् १२९७ वर्षे वैशाखसुदी १४ गुरौ प्राग्वाटज्ञातीया चंड प्रचंड प्रसाद मह श्री सोमान्वये महं श्री असराज सुत महं श्री तेजपालने श्रीमत्पत्तनवास्तव्य मोढ़ ज्ञातीय ठ० आल्हणसुत ठ० आससुतायाः ठकराज्ञी संतोषाकुक्षिसंभूतायाः महं श्रीतेजपालः द्वितीय भार्या मह श्रीसुहडादेव्याः श्रेयार्थं ॥"

यह आजसे ७०० वर्ष पूर्व एक सुप्रसिद्ध महापुरुष द्वारा किये गये अन्तर्जातीय (पोरवाड़+मोढ़) विवाहका उदाहरण है।

३—मथुराके एक प्रतिमा लेखसे विदित है कि उसके प्रतिष्ठाकारक वैश्य थे। और उनकी धर्मपत्नी क्षत्रिया थी।

४—जोधपुरके पास घटियाला ग्रामसे सम्वत् ९१८ का एक शिलालेख मिला है। इसमें कक्कुक नामक व्यक्तिके जैन मन्दिर, स्तम्भादि बनवानेका उल्लेख है। यह कक्कुक उसवंशका था जिसके पूर्व पुरुष ब्राह्मण थे और जिन्होंने क्षत्रिय कन्यासे शादी की थी।

(प्राचीन जैन लेख संग्रह)

५— पद्मावती पुरवालों (वैश्यों) का पांडों (ब्राह्मणों) के

साथ अभी भी कई जगह विवाह सम्बन्ध होता है। यह पांडे लोग ब्राह्मण हैं और पद्मावती पुरवालोंमें विवाह संस्कारादि कराते थे। बादमें इनका भी परस्पर बेटी व्यवहार चालू हो गया।

६—करीब १५० वर्ष पूर्व जब बीजाबर्गी जातिके लोगोंने खंडेलवालोंके समागमसे जैन धर्म धारण कर लिया तब जैनेतर बीजाबर्गियोंने उनका बहिष्कार कर दिया और बेटी व्यवहारकी कठिनता दिखाई देने लगी। तब जैन बीजाबर्गी लोग घबड़ाने लगे। उस समय दूरदर्शी खंडेलवालोंने उन्हें शान्त्वना देते हुये कहा कि "जिसे धर्म बन्धु कहते हैं उसे जाति बन्धु कहनेमें हमें कुछ भी संकोच नहीं है। आजहीसे हम तुम्हें अपनी जातिके गर्भमें डालकर एक रूप किये देते हैं।" इस प्रकार खण्डेलवालोंने बीजाबर्गियोंको मिलाकर बेटी व्यवहार चालू कर दिया। (स्याद्वादकेशरी गुरु गोपालदासजी बरैया द्वारा संपादित जैनमित्र वर्ष ६ अङ्क १ पृष्ठ १२ का एक अंश।)

७—जोधपुरके पाससे सम्बत् ६०० का एक शिलालेख मिला है। जिससे प्रगट है कि एक सरदारने जैन मन्दिर बनवाया था। उसका पिता क्षत्रिय और माता ब्राह्मणी थी।

८—राजा अमोघवर्षने अपनी कन्या विजातीय राजा राजमल्ल सप्तवाधको विवाही थी।

९—आबूके मन्दिरका सम्बत् १२६७का शिला लेख है। उसमें पोरवाड़ और मोढ़ जातियोंके परस्पर उपजाति बिवाह करनेका उल्लेख है। (प्राचीन जैन लेख संग्रह)

नोट—वैवाहिक उदारता के संबंधमें विशेष जानने के लिये लेखक की दूसरी पुस्तक "विजातीय विवाह मीमांसा" पढ़ना चाहिये।

प्रायश्चित्त मार्ग ।

यह कितने खेद का विषय है कि हमारी पंचायतें शास्त्रीय आज्ञा का विचार न करके और अपने निर्णय के परिणाम को न सोचकर मात्र पक्षपात, रूढि या अभिमान के वशीभूत होकर जरा जरा से दोषों पर अपने जाति भाइयों को बहिष्कृत कर देती हैं और उनका मन्दिर तक बन्द करके धर्म कार्य से रोक देती हैं। उन्हें ज्ञात होना चाहिये कि किसी का भी मन्दिर बन्द करने से या दर्शन रोकने से या पूजा कार्य करने से भयङ्कर पाप का बंध होता है। यथा:—

खयकुद्दसूलमूलो लोय भगंदरजलोदरक्खिसिरो।
सीदुण्हवह्मराई पूजादाणन्तरायकम्मफलं ॥३३॥

—रयणसार

अर्थात्—किसी के पूजन और दान कार्य में अन्तराय करने से (रोकने से) जन्म जन्मातर में क्षय, कुष्ठ, शूल, रक्तविकार, भगंदर, जलोदर, नेत्र पीड़ा, शिरोवेदना, आदि रोग तथा शीत उष्ण के आताप और कुयोनियों में परिभ्रमण करना पड़ता है।

इस से स्पष्ट सिद्ध है कि हमारी पंचायतें किसी का मन्दिर बन्द करके उसे दर्शन पूजा से रोक कर घोर पाप का बन्ध करती हैं। किसी शास्त्र में मन्दिर बन्द करने की आज्ञा नहीं है। हां, अन्य अनेक प्रायश्चित बताये गये हैं। उनका उपयोग करना चाहिये। घोर से घोर पाप का प्रायश्चित होता है। जैनधर्म की उदारता ही इसी में है कि वह नीच से नीच पापी को शुद्ध कर सकता है और उसका उद्धार कर सकता है। इसके कुछ शास्त्रीय प्रमाण इस प्रकार हैं। पहले ही पहले जघन्य श्रावकों के प्रमाद वश (कषाय से)

होने वाले पांच महा पातकों का निरूपण इस प्रकार है:—

षण्णां स्याच्छ्रावकाणांतु पंचपातकसन्निधौ ।
महामहो जिनेन्द्राणां विशेषेण विशोधनम् ॥१३९॥

—प्रायश्चित्तचूलिका ।

अर्थात्—श्रावकों को मुनियों के प्रायश्चित्त से चतुर्थांश प्रायश्चित्त तो दिया ही जाता है (ऋषीणां प्रायश्चित्तस्य चतुर्थभागः श्रावकस्य दातव्यः) किन्तु इसके अतिरिक्त छह जघन्य श्रावकों का प्रायश्चित्त और भी विशेष है। सो कहते हैं, गौबध, स्त्री हत्या, बालघात, श्रावक विनाश और ऋषि विघात ऐसे पांच पापों के बन जाने पर जघन्य श्रावकों के लिये जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करना विशेप प्रायश्चित्त है।

इस से सिद्ध है कि हत्यारे से हत्यारे श्रावक की भी शुद्धि हो सकती है। और उस शुद्धि में जिनपूजा करना विशेष प्रायश्चित है। किन्तु हमारी समाज के अत्याचारी दण्ड विधान से मालूम होगा कि पंचराज जरा जरा से अपराधों पर जैनों को समाज से मक्खी की तरह निकाल कर फेंक देते हैं और उन्हें जिनपूजा तो क्या जिनदर्शन तक का अधिकार नहीं रहता है।

हमारा शास्त्रीय प्रायश्चित्त विधान तो बहुत ही उदारतापूर्वक किया गया है। किन्तु शास्त्रीय आज्ञा का विचार न करके आज समाज में मनमानी हो रही है। यदि शास्त्रीय आज्ञाओं को भली भांति देखें तो ज्ञात होगा कि प्रत्येक प्रकार के पाप का प्रायश्चित्त होता है। प्रायश्चित्तचूलिका के कुछ प्रमाण इस प्रकार हैं:—

आदावंते च षष्ठं स्यात् क्षमणान्येकविंशति ।
प्रमादाद्गोवधे शुद्धिः कर्तव्या शल्यवर्जितैः॥१४०॥

अर्थ—माया मिथ्या और निदान इन तीनों शल्यों से रहित होकर उक्त छह श्रावकों को प्रमाद से या कषाय से गौ का बध हो जाने पर आदि में और अन्त में षष्ठोपवास तथा मध्य में २१ उपवास करना चाहिये।

सौवीरं पानमाम्नातं पाणिपात्रे च पारणे।
प्रत्याख्यानं समादाय कर्तव्यो नियमः पुनः ॥१४१॥

अर्थ—और पारणा के दिन पाणिपात्र में कांजिकपान करना चाहिये। तथा चार प्रकार के आहार की छुट्टी होकर फिर श्रावक प्रतिक्रमण आदि नियम से करे।

त्रिसंध्यं नियमस्यान्ते कुर्यात् प्राणशतत्रयं।
रात्रौ च प्रतिमां तिष्ठेन्निर्जितेन्द्रियसंहतिः ॥ १४२ ॥

अर्थ—तीनों समय सामायिक करे तीन सौ उच्छ्वास प्रमाण मायोत्सर्ग करे और इन्द्रियों को वश में करता हुआ रात्रि में भ: प्रतिमा रूप तिष्ठकर कायोत्सर्ग करे।

द्विगुणं द्विगुणं तस्मात् स्त्रीबालपुरुषे हतौ।
सद्दृष्टिश्रावकर्षीणां द्विगुणं द्विगुणं ततः ॥१४३॥

अर्थ—स्त्री, बालक और मनुष्य के मारने पर गौबध प्रायश्चित्त से दूना प्रायश्चित्त है। और सम्यग्दृष्टि श्रावक तथा ऋषिघात का प्रायश्चित्त उस से भी दूना है।

इतना उदारता पूर्ण दण्ड विधान होने पर भी वर्तमान पंचायती शासन बहुत ही अनुदार, कठोर एवं निर्दयी बन गया है। मनुष्यघात की बात ही दूर रही मगर यदि किसी से अज्ञात दशामें भी चिड़िया का अण्डा तक मर जाय तो उसे जातिसे बन्द कर देते हैं और मन्दिर में आने की भी मनाई करदी जाती है। इसके

उदाहरण आगे के प्रकरण में देखिये।

जिस प्रकार जैन शास्त्रों में हिंसा का दण्ड विधान है उसी प्रकार पांचों पापों का तथा अन्य छोटे बड़े सभी अपराधों का दण्ड विधान किया गया है। जैसे व्यभिचार का दण्ड विधान इस प्रकार बताया है:—

सुतामातृभगिन्यादिचाण्डालीरभिगम्य च।
अश्नवीतोपवासानां द्वात्रिंशतमसंशयं ॥ १८० ॥

अर्थ—पुत्री, माता, बहिन आदि तथा चण्डाली आदि के साथ संयोग करने वाले नीच व्यक्ति को ३२ उपवास प्रायश्चित्त है।

किन्तु हम देखते हैं कि इतना निकट का अनाचार ही नहीं किन्तु बहुत दूर भी अनाचार यदि किसी से हो जाय तो वह सदाके लिये वहिष्कृत कर दिया जाता है। यही कारण है कि आज जैनसमाजमें हजारों विनैकावार (जातिच्युत) भाई'घरके न घाटके' रह कर मारे मारे फिरते हैं। क्या ऊपर कहे अनुसार उन्हें प्रायश्चित्त देकर शुद्ध नहीं किया जा सकता ?

हमारे आचार्यों ने कहीं कहीं तो इतनी उदारता बताई है कि किसी एक अपराध के कारण वहिष्कार नहीं करना चाहिये। श्री सोमदेव सूरि ने यशस्तिलक चम्पू में लिखा है:—

नवैः संदिग्ध निर्वाहैर्विदध्याद्गणवर्धनम्।
एकदोषकृते त्याज्यः प्राप्ततत्वः कथं नरः ॥

ऐसे भी नवदीक्षित मनुष्यों से जाति की संख्या बढ़ाना चाहिये जो संदिग्ध निर्वाह हैं। अर्थात् जिनके विषय में यह सन्देह है कि वे जाति का आचार विचार कैसे पालन करेंगे ? किसी एक दोष के कारण कोई विद्वान् जाति से वहिष्कृत करने योग्य कैसे हो

सकता है ? अर्थात् उसका बहिष्कार नहीं करना चाहिये।

उपेक्षायां तु जायेत तत्त्वाद्दूरतरो नरः।
ततस्तस्य भवो दीर्घः समयोऽपि च हीयते॥

अर्थात्—जाति बहिष्कार करने पर मनुष्य तत्व से—सिद्धान्त से दूर हो जाता है। और इसलिये उसका संसार बढ़ता रहता है तथा धर्म की भी हानि होती है।

इस प्रकार जाति बहिष्कार को समाज तथा धर्म की हानि करने वाला बताया है। इस ओर पंचायतों को दण्ड विधान में सुधार करना चाहिये। तभी पंचायती सजा कायम रहेगी और तभी धर्म तथा समाज की रक्षा होगी। राजा महाबल की कथा से मालूम होता है कि कैसी भी पतित स्थिति में पहुँचने पर भी मनुष्य सदा के लिये पतित या धर्म का अनधिकारी नहीं हो जाता किन्तु उसे बाद में उतना ही धर्माधिकार रहता है जितना कि किसी धर्मात्मा और शुद्ध कहे जाने वाले श्रावक को। उस कथा का भाव यह है कि—

राजपुत्र महाबल ने कनकलता नाम की राजपुत्री से संभोग किया। वह बात सर्वत्र फैल गई। फिर भी उन दोनों ने मिलकर मुनि गुप्तनामक मुनिराज को आहार दिया और फिर वे दोनों दूसरे भव में राजकुमार-राजकुमारी हुये। यह कथा उत्तरपुराण पर्व ७५ में देखिये—

बहिस्थितः कुमारोऽसौ कन्यायामतिशक्तिमान्।
तयोर्योगोऽभवत्कामावस्थामसहमानयोः॥ ८९॥
मुनिगुप्ताभिधं वीक्ष्य भक्त्या भिक्षागवेषिणं।
प्रत्युत्थाय परीत्याभि वंद्याभ्यर्च्य यथाविधि॥ ९०॥

स्वोपयोगनिमित्तानि तानि खाद्यानि मोदतः ।
स्वादूनि लड्डुकादीनि दत्त्वा तस्मै तपोभृते ॥ ६१ ॥
नवभेदं जिनोद्दिष्टमदृष्टं स्वेष्टमापतुः ।

इस कथा भाग से यह स्पष्ट सिद्ध है कि इतने अनाचारी लोग भी मुनिदान देकर पुण्य संपादन कर सकते हैं। यदि कोई यों कुतर्क करे कि मुनि महाराज को उनके पतन की खबर नहीं थी, सो भी ठीक नहीं है। कारण कि यदि उनका ऐसी स्थिति में आहार देना अयोग्य होता तो वे पापबन्ध करते किन्तु उनने तो आहार देकर नौ प्रकार का पुण्य संपादन किया था। और दुर्गति में न जाकर राजघरों में उत्पन्न हुये। कहां तो यह उदारता और कहां आजके अविवेकी पक्षांध लोग शुद्धलोहड़साजन भाइयों के हाथ का आहार लेना अनुचित बतलाते हैं और कुछ पक्षपाती मुनि ऐसी प्रतिज्ञायें तक लिवाते हैं! इस मूढ़ता का क्या कोई ठिकाना है ?

कोई यों कुतर्क उठाते हैं कि प्रायश्चित्त विधान तो पुरुषों को लक्ष करके ही किया गया है, स्त्रियों के लिये तो ऐसा कोई विधान है ही नहीं। तो वे भूलते हैं। कारण कि कई जगह प्रायः पुरुषों को लक्ष रख कर ही कथन किया जाता है किन्तु वही कथन स्त्रियों के लिये भी लागू होजाता है। जैसे—

(१) पंचाणुव्रतों में चौथा अणुव्रत 'स्वदार संतोष' कहा है। यह पुरुषों को लक्ष करके है। कारण कि स्वदार (स्वस्त्री) संतोषपना पुरुष के ही हो सकता है। फिर भी स्त्रियों के लिये इसे 'स्वपुरुष संतोष' के रूपमें मान लिया जाता है।

(२) सात व्यसनों में 'परस्त्री सेवन' और 'वेश्यागमन' भी

है। मगर यह दोनों व्यसन पुरुषों के हीसंभव हैं, स्त्रियों के नहीं। फिर भी पहले का अर्थ स्त्रियों के लिये 'परपुरुष सेवन' लगाया जाता है। और वेश्यासेवन की जगह तो स्त्रियों के लिये कोई दूसरा अर्थ भी नहीं मिलता फिर भी स्त्रियों की अपेक्षा भी सात ही व्यसन होते हैं, न कि पांच या छह।

(३) तमाम श्रावकाचार प्रायः श्रावकों को लक्ष करके लिखे गये हैं। फिर भी वही कथन श्राविकाओं के लिये भी लागू होता है। कोई भिन्न 'श्राविकाचार' तो है ही नहीं।

इसीप्रकार प्रायश्चित्त विधान जो पुरुषोंके लिये है वहीं स्त्रियों के लिये भी समझना चाहिये। और पुरुषों की भांति स्त्रियों को भी प्रायश्चित देकर शुद्ध करना चाहिये। अन्यथा वे अबलायें मुसलमान और ईसाई होती रहेंगी तथा जैनसमाजका क्षय होताजायगा।

हमारी विवेकहीन पंचायतें अपने जाति भाइयों को किस प्रकार जाति पतित बनाती हैं। इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं जो अभी ही बने हैं और बिलकुल सत्य हैं।

(१) एक जैन की मां अन्धी थी वह बाहर शौच के लिये जा रही थी, मार्ग में एक कुवां था, वह न दिखने से बुड्ढी मां उसमें अनायास गिर पड़ी और मर गई! बस, विचारे उस जैन को जाति से बन्द कर दिया और उसका मन्दिर भी बन्द कर दिया।

(२) एक जैन स्त्री बाहर शौच के लिये गई थी। वहां एक बदमाश मुसलमान ने उसे छेड़ा। तब उस वीर महिला ने उस मुसलमान को लोटे से इतना मारा कि वह घायल हो गया और एक गड्ढे में जा गिरा। फिर भी तरह तरह की शंकायें करके वह स्त्री जाति से बन्द करदी गई।

(३) दो जैनों के घोड़े आपस में लड़ पड़े। एक घोड़ा मर

गया। इसलिये जिस के घोड़े ने मारा था वह जैन वहिष्कृत कर दिया गया।

इसी प्रकार पचायती अन्याय के सैकड़ों नमूने उपस्थित किये जा सकते हैं। हमारा तो ख्याल है कि यदि पंच लोग इस प्रकार के अन्याय करें तो उनके विरुद्ध कोर्ट की शरण लेकर उन की अक्कल ठिकाने लानी चाहिये, हमारा शास्त्रीय प्रायश्चित्त दण्ड विधान बहुत ही उदार है, कोर्ट में वह बताना चाहिये, उसी के अनुसार दण्ड दिया जाना उचित है। बिना इस मार्ग के ग्रहण किये अन्याय दूर नहीं होगा, इसके पूर्व इसी पुस्तक के पृष्ठ १५ पर "शास्त्रीय दण्ड विधान" और पृष्ठ १६ पर "अत्याचारी दण्ड विधान" नामक दो प्रकरण इसो विषय में दिये गये हैं, उनसे भी प्रायश्चित्त मार्ग विशेष मालूम हो सकेगा।

जातिमद।

वर्तमान में जैन धर्म की उदारता को नष्ट करने वाला जाति मद है। हमने धर्म के असली रूप को भुला दिया है और जाति के विकृत रूप को असली रूप मान लिया है। यही हमारे पतन का कारण है। इसी पुस्तकके पूर्व भागमें यह भली भांति बताया जा चुका है कि जैनधर्म ने जाति को प्रधानता न देकर गुणों की आराधना करने का उपदेश दिया है। किन्तु इस ओर ध्यान न देकर हम जातियों के कल्पित भेद-जाल में फंसे हुये हैं। जब कि श्री अमितगति आचार्य ने जातियों को वास्तव में कल्पित और मात्र आचारपर आधार रखने वाली बताया है। यथाः—

ब्राह्मण क्षत्रियादीनां चतुर्णामपितत्त्वतः।
एकैव मानुषीजातिराचारेण विभज्यते ॥

अर्थात्—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह जातियां तो वास्तव में आचरण पर ही आधार रखती हैं। वैसे सचमुच में तो एक मनुष्य जाति ही है। इससे सिद्ध है कि कोई एक जाति का पुरुष दूसरी जाति के आचरण करने पर उसमें पहुंच सकता है। यदि इन जातियोंमें वास्तविक भेद माना जाय तो आचार्य कहते हैं कि-

भेदे जायते विप्राणां क्षत्रियो न कथंचन।
शालिजातौ मया दृष्टः कोद्रवस्य न संभवः॥

अर्थात्—यदि इन जातियों का भेद वास्तविक होता तो एक ब्राह्मणीसे कभी क्षत्रिय पुत्र पैदा नहीं होना चाहिये था (किन्तु होता है) क्योंकि चावलों की जाति में मैंने कभी कोदों को उत्पन्न होते नहीं देखा है।

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि आचार्य महाराज जातियों को परम्परागत स्थायी नहीं मानते हैं। और ब्राह्मणी के गर्भ से क्षत्रियसंतान होना स्वीकार करते हैं। फिरभी समझ में नहीं आता कि हमारे आधुनिक स्थितिपालक पण्डित लोग जातियों को अजर अमर किस आधार पर मान रहे हैं! और असवर्ण विवाह का निषेध कैसे करते हैं! जहां आचर्य महाराज ब्राह्मणीके गर्भसे क्षत्रिय संतान का होना मानते हैं वहां हमारे पण्डित लोग उसे धर्म का अनधिकारी बताते हैं और कहते हैं कि उसकी पिण्ड शुद्धि नहीं रहेगी। इस प्रकार पिण्ड शुद्धि को धर्म से बढ़कर मानने वालोंके लिये श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है:—

णवि देहो वंदिज्जइ णवि य कुलो णवि य जाइ संजुत्तो।
को वंदिम गुणहीणो णहु सवणा णेव सावओ होई॥

अर्थात्—न तो देह की वंदना होती है न कुल की होती है

और न ऊंची जाति का कहलाने से ही कोई बड़ा हो जाता है। क्योंकि गुणहीन की कौन वंदना करेगा? गुणों के बिना कोई श्रावक या मुनि भी नहीं कहा जासकता। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि गुणों के आगे जाति या कुल की कोई कीमत नहीं है। अकुलीन और नीच जाति के कहे जानेवाले अनेक गुणवान महापुरुष बन्द-नीय हो गये हैं और हो सकते हैं जब कि बड़ी जाति और बड़े कुलके कहे जाने वाले अनेक गोमुखव्याघ्र नीच से नीच माने गये हैं। इसलिये जाति मद को छोड़कर गुणों की पूजा करना चाहिये।

अजैनों को जैन दीक्षा।

जैन धर्म की एक विशेष उदारता यह है कि उसमें दूसरे धर्मावलम्बियों को दीक्षित करके समान अधिकार दिये जाते हैं। आदिपुराण के पर्व ३९ में श्लोक ६० से ७१ तक देखने से यह उदारता भली भांति मालूम हो जायगी। इस प्रकरण में स्पष्ट कहा कि "विधिवत्सोऽपि तं लब्ध्वा याति तत्समकक्षतां॥" इसी विषय को टीकाकार पं० दौलतरामजी ने इस प्रकार लिखा है:—
"वह भव्य पुरुष जो व्रत के धारक उत्तम श्रावक हैं, तिनसूं कन्या प्रदानादि सम्बन्ध की इच्छा जाकै सो चार श्रावक बड़ी क्रिया के धारक तिनकूं बुलाइ कर यह कहै—गुरु के अनुग्रह तें अयोनिस-म्भव जन्म पाया, आप सरीखी क्रियाओं का आचरण करूं हूं आदि, आप मोहि समान करौ। वे श्रावक बाकी प्रशंसा करि वर्ण-लाभ क्रिया द्वारा ताहि युक्त करैं, पुत्र पुत्रीन का सम्बन्ध यासूं करें।" इत्यादि।

अजैनों को जैन बनाकर उनकी प्रतिष्ठा किये जाने के सैकड़ों

उदाहरण हमारे जैन शास्त्रों में मिलते हैं। यथा—

(१) गौतम गणधर मूल में ब्राह्मण थे। बाद में वे महावीर स्वामी के समवशरण में जाकर जैन हुये। मुनि हुये। जैनों के गुरु हुये। और मोक्ष गये। (महावीर चरित्र)

(२) राजा श्रेणिक बौद्ध थे, फिर भी जैन कन्या चेलना से विवाह किया। बाद में जैन होकर वे वीर भगवान के समवशरण में मुख्य श्रोता हुये। उनके साथ न तो किसी ने खान पान का परहेज रक्खा और न जाति ने बन्द किया। किन्तु प्रतिष्ठा की। पूज्यत्व की दृष्टि से देखा। (श्रेणिक चरित्र)

(३) समुद्रदत्त अजैन थे। उनके पुत्र ने जैन होकर एक जैन कन्या से विवाह किया। (आराधना कथाकोश भाग२ कथा नं०२८)

(४) नागदत्त सेठ पुत्र सहित समाधिगुप्त मुनि के पास जैन बन गया। तब उसके पुत्र के साथ जिनदत्त (जैन) ने अपनी पुत्री विवाह दी। नागदत्त तथा पुत्र और पुत्रवधू आदि सब जिन-पूजादि करते थे। (आराधना कथा नं० १०६) इससे सिद्ध है कि अजैन के जैन हो जाने पर उससे रोटी बेटी व्यवहार हो सकताहै।

(५) जब भारत पर सिकन्दर बादशाह ने चढ़ाई की उस समय एक जैन मुनि उनके साथ यूनान गये। वहां उनने नये जैनी बनाये और उन नव दीक्षित जैनों के हाथ का आहार ग्रहण किया। (जैन सिद्धान्त भास्कर २–३ पृ० ६)

(६) अफरीका के अबीसीनिया में दि० जैन मुनि पहुंचे थे। वहां भी उनने विदेशियों के यहां आहार लिया था। (भगवान महावीर और म० बुद्ध पृ० ६६)

(७) अफगान और अरब आदि देशों में जैन प्रचारक पहुंचे थे और वहां के निवासियों को (जिन्हें म्लेच्छ समझा जाता है)

जैनधर्म में दीक्षित किया था। और वे इन नव दीक्षित जैनों के यहां आहार करते थे। (इन्डियन सेक्ट० आफ दी जैन्स पृ० ४ फुट नोट)

(८) जब यूनानवासी भारत के सीमा प्रान्त पर बस गये थे तब उनमें से अनेकों को जैनधर्म में दीक्षित किया गया था। (भगवान महावीर पृ० २४३)

(९) लोहाचार्य ने अगरोहे के अजैनों को जैन बनाकर सबका परस्पर खान पान एक करा दिया था। (अग्रवाल इतिहास)

(१०) जिनसेनाचार्य के उपदेश से ८२ गांव राजपूतों के और २ सुनारों के जैनधर्म में दीक्षित किये गये। उन्हीं से ८४ गोत्र खण्डेलवालोंके हुये। क्षत्रिय और सुनार जैन खंडेल वालों में रोटी बेटी व्यवहार चालू हो गया और अभी भी है। उन्हीं ग्रामों पर से ८४ गोत्र बने थे। (विश्वकोष अ० ५ पृ० ७१८)

(११) खंडेलवालोंके पूर्वजों ने अजैन बीजावर्गियों को शुद्ध कर जैन बनाया और उनके साथ रोटी बेटी व्यवहार चालू कर दिया।

(१२) जैन समाज में प्रसिद्ध कवि जिनबख्श नव दीक्षित जैन थे। वे जैनधर्म के पक्के श्रद्धानी थे। इनके पद प्रसिद्ध हैं। और वे पद जैन मन्दिरों में शास्त्र सभा में भक्ति पूर्वक गाये जाते हैं। जैन विद्वानों ने मुसलमान जिनबख्श को श्रावकधर्म की दीक्षा दी थी। और साथ जलपान तक अच्छे २ जैन करते थे।

(१३) सन् १८७६ तक अजैनों को शुद्ध करके जैन बनाने की प्रथा चालू थी। यह बात बुल्हर सा० ने अपनी 'दी इण्डियन सेक्ट आफ दी जैन्स' पुस्तक के पृ० ३ पर लिखी है। उनने लिखा है कि जैनधर्म का उपदेश आर्य अनार्य पशु पक्षी सबके लिये हुआ था। और इस नियम के अनुसार आज भी नीच जाति के

मनुष्यों तक को जैनी बनाना बन्द नहीं है। मुसलमान जो म्लेच्छ समझे जाते हैं वह भी जैन जातियों में मिला लिये जाते थे।

(१४) पं० दौलतरामजी ने आदिपुराण की भाषा वचनिका में स्पष्ट लिखा है कि "वे नव दीक्षित तुम सरीखे सम्यग्दृष्टीन के अलाभ विषे मिथ्यादृष्टीन सों सम्बन्ध होय है इस तरह कहें और वे श्रावक इसको वर्ण लाभ क्रिया से युक्त करें अर्थात् णमोकार मंत्र पढ़ाकर आज्ञा करें कि पुत्र पुत्रीन का संबध यासूं किया जाय उनकी आज्ञा तें वर्णलाभ क्रिया को पायकर उनके समान होय।" इससे स्पष्ट सिद्ध है कि अजैनों को जैन बनाकर उनके साथ रोटी व्यवहार करना शास्त्र सम्मत है। फिर आज जो जैनी जैनों के साथ रोटी बेटी व्यवहार करना अनुचित कहते हैं उन्हें शास्त्राज्ञा पालक कैसे कहा जा सकता है।

(१५) पात्रकेशरी अजैन ब्राह्मण थे। बाद में वे जैन होकर दिगम्बर मुनि हुये। जैनों ने उन्हें पूजा और गुरू माना। (आराधना कथाकोश कथा नं० १)

(१६) अकलंकस्वामी की कथा से मालूम होता है कि हिमशीतल राजा अपनी प्रजा सहित जैनधर्मी होगया था। (कथा नं० २)

(१७) चोरों का सरदार सूरदत्त मुनि होकर मोक्ष गया। और जैनों का पूज्य परमात्मा बन गया। (कथा नं० १४)

(१८) जैन सम्राट चन्द्रगुप्त ने सेल्यूकस की कन्या से विवाह किया था। यह इतिहास सिद्ध है। फिर भी जाति या धर्म संबंधी कोई बाधा नहीं आई।

(१९) अनेक इण्डो-ग्रीक लोग जैनी हुये थे। यह बात बौद्ध ग्रन्थ 'मिलिन्दपन्ह' से प्रगट है।

(२०) कुशानकालीन मथुरा वाले जैन मन्दिर व जैन मूर्तियों

से प्रगट है कि उस समय 'नृतक' लोग तक जैनमन्दिर और जैन मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाते थे।

(२१) वज्रयश नामक मुनि पण-स्कैथियन थे। पणिक मुनि भी इसी जाति के होना संभव है।

(२२) भारत के मूल निवासी गौड़ और द्रविड़ जातियों में भी जैनधर्म का प्रचार हुवा था, इनमें की असभ्य जातियां शुद्ध करके जैन बनाली गई थीं। भार लोग जो पहले पहाड़ों में रहते थे और मांस भक्षी थे वह भी जैनधर्म में दीक्षित किये गये थे, (ऑन दी ओरिजिनल इन्हैवीटेन्टस आफ भारतवर्ष पृ० ४७) एक समय यह लोग बुन्देलखण्ड के राज्याधिकारी होगये थे।

(२३) बल्लुवर नामक जाति भी जैन धर्मानुयायी थी। प्रसिद्ध तामिल ग्रंथ "कुरल" के कर्ता वल्लुवर जाति के थे और जैन थे। ये जातिबाह्य समझे जाते थे।

(२४) कुरुम्ब लोग भारत के बहुत प्राचीन असभ्य हैं। यह पहले जंगलों में मारे मारे फिरते थे। और हिरण आदि का शिकार करके अपना पेट भरा करते थे। फिर ये ग्रामों में बसने लगे और खेती करने लगे। परन्तु इनका मुख्य कर्म भेड़ों को चराना रहा है। आज भी अधिकांश कुरुम्ब गड़रिया ही हैं। पहिले इनका कोई धर्म नहीं था। एक जैन मुनि ने उन सबको जैन बना लिया था। इनका मुख्य नगर 'पुलाल' था। और इनने अपना एक राजा भी चुन लिया था। इस राजा ने एक जैनमुनिकी स्मृति में एक 'जैन वस्ती' (जैनमन्दिर) भी पुलाल में बनवाया था। जो आजभी वहां ध्वंशावशेष मौजूद है। इसके अतिरिक्त औरभी कई जैन मन्दिर वहां मौजूद हैं। यह पुलाल मदरास से करीब ८ मील की दूरी पर है। अभी भी कुछ कुरुम्ब जैन मौजूद हैं।

(२५) गुजरात के देवपुर में दिगम्बर मुनि जीवनन्दि संघ सहित गये थे। वहां जैन नहीं थे इसलिये वे शिवालय में ठहरे और नये जैन बनाकर उनसे आहार लिया।

इन उदाहरणों से ज्ञात होगा कि जैनधर्म कितना उदार है। इसने कैसी कैसी जंगली जातियों तक को अपना कर जिनधर्मी बनाया, कैसे कैसे पतितों को पावन किया और कैसे कैसे दुष्टात्माओं को उपदेश देकर जैन मार्ग पर लगा दिया। सच्चा मानव धर्म तो यही है। जिस धर्म में ऐसे लोगों को पचाने की शक्ति नहीं है उस मुर्दा धर्म से लाभ ही क्या है? दुःख है कि वर्तमान जैन समाज अपने उदार धर्म को मुर्दा बनाती जा रही है। क्या इन उदाहरणों से समाज की आंखें खुलेंगी? और वह अपने कर्त्तव्य को समझेगी?

कथा ग्रंथों में तो ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे जिनसे जैन धर्म की उदारता का पता भली भांति लगाया जा सकता है। कुछ पुण्याश्रव कथाकोश से प्रगट किये जाते हैं।

(१) पूर्णभद्र आर मानभद्र ने एक कूकरी और एक चाण्डाल को उपदेश देकर सन्यास युक्त पंचाणुव्रत ग्रहण कराये। चाण्डाल सन्यासमरण करके सोलवें स्वर्गमें गया और नन्दीश्वर नामक महर्द्धिक देव हुआ और कूकरी मरकर राजपुत्री हुई। (कथा नं० ६-७)

(२) दो माली की कन्यायें प्रतिदिन जिन मंदिर की देहली पर फूल चढ़ाती थीं उसके पुण्य से ये देवियां हुईं।

(३) अर्जुन चाण्डाल उपास लेकर और सन्यास ग्रहण कर गुफा में जा बैठा। चाण्डाल होकर भी उसने केवली की वन्दना की थी। पहले वह महान् हिंसक था। सन्यास मरण करके वह देव हुआ (कथा नं० ८)

(४) नागदत्ता अजैन थी। उसकी कन्या धनश्री वसुमित्र वैश्य (जैन) को विवाही थी। वसुमित्र ने धनश्री को जैन बना लिया और धनश्री ने अपनी माता को जैन बना लिया। कैसी सुन्दर उदारता है, कैसा अनुकरणीय उद्धारक मार्ग है ?

पूर्वाचार्य अजैनों को जैन दीक्षा देकर धर्म प्रचार का कार्य करते थे। किन्तु आजकल हमारे साधुओं में इतनी उदारता नहीं है। मूलाचार में आचार्य के लक्षण बताते हुये लिखा है कि 'संगहणुग्गह कुसलो' अर्थात् आचार्य का कर्तव्य है कि वह नये मुमुक्षुओं की जैन दीक्षा देकर उनका संग्रह करने और अनुग्रह करने में कुशल हो। कथा ग्रंथों से ज्ञात होता है कि कई जैन साधु प्रति दिन कुछ न कुछ नये लोगों को जैन बनाते थे। माघनन्दि आचार्य ५० नये जैन बनाकर ही आहार करते थे। किन्तु खेद का विषय है कि वर्तमान में जैन मुनिराज जैनों का बहिष्कार कराते हैं, अमुक जैन जाति के साथ खान पान नहीं रखना, इत्यादि नियम कराते हैं। और आपस आपस में मुनि लोग एक दूसरे की बुराई करके जुदा जुदा गुट्ट बनाते हैं। इसे देख कर भद्रबाहु चरित्र में वर्णन किये गये चन्द्रगुप्त के १४वें स्वप्न का फल याद आजाता है कि—

रजसाच्छादितरुद्ररत्नराशेरीक्षणतो भृशम्।
करिष्यन्ति नपाः स्तेयां निर्ग्रन्थ मुनयो मिथः ॥४७॥

अर्थात्—धूलिसे आच्छादित रत्नराशि के देखने से मालूम होता है कि निर्ग्रन्थमुनि भी परस्परमें निन्दा करने लगेंगे। वास्तव में हुआ भी ऐसा ही। यदि अभी भी हमारे साधुगण अपने कर्तव्यका पालन करें तो हजारों नये जैन प्रतिवर्ष बन सकते हैं। जैनधर्म सरीखी उदारता तो अन्य किसी भी धर्म में नहीं है। वाजू

कामताप्रसादजी ने अपनी 'विशाल जैनसंघ' नामक पुस्तक में कुछ ऐसे उदाहरण संग्रहीत किये हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि जैनधर्म की पाचनशक्ति कितनी तीव्र है। वह सभी जाति के सभी मानवों को अपने में मिला सकता है। थोड़े से उदाहरण दिये जाते हैं।

संवत ११७६ में श्री जिनवल्लभ सूरि ने 'पडिहार' जाति के राजपूत राजा को जैन बना कर महाजन वंश में शामिल किया था। उसका दीवान जो कायस्थ था वह भी जैनी होकर महाजन (श्रेष्ठि वैश्य-श्रावक) हुआ था।

(२) खीची राजपूत जो धाड़ा मारते थे जैनी हुये थे।

(३) जिनभद्रसूरि ने राठौर वंशी राजपूतों को जैनी बनाया था।

(४) सं० ११६७ में परमार वंशी क्षत्री भी जैनी हुये थे।

(५) सं० ११६६ में जिनदत्तसूरि ने एक यदुवंशी राजा को जैनी बनाया था, जो मांस मदिरा खाता था।

(६) सं० ११६८ में जिनवल्लभ सूरि ने सोलंकी राजपूत राजा को जैनी बनाया था।

(७) सं० ११६८ में भाटी राजपूत राजा जैनी हुआ था।

(८) सं० ११८१ में २४ जातियां चौहानों की जैनी हुई थीं।

(९) सं० ११६७ में सोनीगरा जाति का राजपूत राजा जैनधर्म में दीक्षित हुआ था।

(१०) इसके बहुत पहले ओसिया ग्राम के राजपूत राजा अपनी प्रजा सहित जैनी हुये थे। वही लोग 'ओसवाल' के नाम से प्रसिद्ध हुये।

(११) पन्द्रहवीं शताब्दी में चौहान सामन्तसिंह के वंशजों में एक बच्छसिंह हुए, जो जैनधर्म के भक्त हो गये थे। उन्हीं के वंशज आजकल 'बच्छावत' जैन हैं।

(१२) मारवाड़ के राठौर राजा रायपाल से ओसवालों के मुंहणोत गोत्र की उत्पत्ति है। उनके मूल पुरुष सप्तसेन जैन-धर्म में दीक्षित हुये थे। तब ओसवालों ने उनको अपने में मिला लिया था।

(१३) ओसवालों में भण्डारी गोत्र है। भण्डारियों के मूल पुरुष नाडौल के चौहान राजा लखनसी थे। यशोधर सूरि ने इनके पुत्र दादराव को सन् ६६२ में जैनधर्म की दीक्षा दी थी। तब से यह लोग ओसवालों में शामिल कर लिये गये।

(१४) बौद्धों के 'मिलिन्द पन्ह' नामक ग्रंथसे प्रगट है कि ५०० योद्धा (यूनानियों) ने भगवान महावीरस्वामी की शरण ली थी और उनके राजा मेनेन्डर (मिलिन्द) ने जैनधर्म की दीक्षा ली थी।

(१५) उपाली नामक एक नाई भगवान महावीर स्वामी का अनन्य भक्त था।

(१६) अथर्व वेद से प्रगट है कि अनार्य व्रात्यों को जैनधर्म में दीक्षित किया गया था।

(१७) हिन्दुओं के 'पद्मपुराण' के प्राचीन उद्धरण में दया-वान चाण्डाल व शूद्र को ब्राह्मणवत् बतलाकर एक दिगम्बर जैन मुनि होना लिखा है।

(१८) पञ्चतन्त्र के मणिभद्र सेठ वाले आख्यान से विदित है कि एक नाई के यहां दिगम्बर जैनमुनि आहार के लिये पहुंचे थे

(१९) जिनभूतवलि आचार्य की कृपा से हम आज जिनवाणी के दर्शन कर रहे हैं वे शक जाति के विदेशी राजा नरवाहन या नहपान थे।

(२०) बुल्हर सा०ने सन् १८७६ में अहमदाबाद में जैनों द्वारा कुछ मुसलमानों को शुद्ध करके जैनधर्म में दीक्षित होते हुये अपनी

आंखों से देखा था और उनने लिखा है कि अभी तक माली छीपी आदि जातियों को जैनधर्म ग्रहण करने का द्वार बन्द नहीं है।

(२१) दक्षिण भारत में एक दिगम्बराचार्य ने कुरुम्ब और भार जैसी असभ्य जातियों को जैनधर्म में दीक्षित किया था। कुरुम्ब लोग शिकारी और मांस भक्षी थे। वही जैन हुए और फिर उनने बड़े बड़े जैन मन्दिर बनवाये थे।

(२२) पणि (पर्णि) जाति के विदेशी व्यापारी ने महावीर स्वामी के निकट मुनि दीक्षा ली और वह अन्तःकृत केवली हुआ।

(२३) भविष्यदत्त विदेशी (समुद्र पार की) कन्या को व्याह कर लाये थे और वह बाद में आर्यिका हो गई थी।

(२४) यति नयनसुखदास कृत 'अठारह नाते की कथा' में जैन दीक्षा की उदारता स्पष्ट प्रगट है। धनपति सेठ मधुसेना वेश्या से फंसा था। उससे कुवेरदत्त और कुवेरदत्ता नामक दो सन्तानें पैदा हुई। वेश्यागामी व्यभिचारी धनपति सेठ ने मुनि दीक्षा ली और अन्त में कर्म काट मोक्ष गया। कुवेरदत्त और कुवेरदत्ता (भाई-बहिन) का आपस में विवाह हो गया। अन्त में विरक्त होकर वेश्यापुत्री कुवेरदत्ता ने क्षुल्लिका की दीक्षा लेली। कुवेरदत्त अपनी माता मधुसेना से फंस गया और उससे एक लड़का हुआ। बाद में कुवेरदत्त और वेश्या मधुसेना ने मुनिराज के पास दीक्षा ली। इस कथा से स्पष्ट सिद्ध है कि जैनधर्म वेश्याओं को, उनकी सन्तानों को और घोर व्यभिचारियों को भी दीक्षा देकर उन्हें मोक्ष-गामी बना सकता है।

श्वेताम्बर जैन शास्त्रों में उदारता के प्रमाण।

श्वेताम्बर जैन शास्त्रों में जैन धर्म की उदारता के बहुत से प्रबल प्रमाण मिलते हैं। उनसे ज्ञात होता है कि जैनधर्म वास्तव में मानव मात्रको धर्मधारण करने की आज्ञा देता है। नीच, पापी और अत्याचारियों की शुद्धिका भी उपाय बतलाता है और सबको शरण देता है। श्वे० शास्त्रों के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं:-

(१) मेहतार्य मुनि चाण्डाल थे। बाद में वे दीक्षा लेकर मोक्ष गये।

(२) हरिबल जन्म से मच्छीमार था। अन्त में वह मुनि दीक्षा लेकर मोक्ष गये।

(३) अर्जुन माली ने ६ माह तक १ स्त्री और ६ पुरुषों की हत्या की थी। अन्त में भगवान महावीर स्वामी के समवशरण में उस हत्यारे को शरण मिली। वहां उसने मुनि दीक्षा ली और मोक्ष गया।

(४) आदिमखां मुसलमान जैन था। उसके बनाये हुये भजन आज भी गाये जाते हैं।

(५) दुर्गंधा वेश्या पुत्री थी। वही श्रेणिक राजा की पत्नी हुई थी (त्रिषष्टि०)

(६) ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती का जीव पूर्व भव में चाण्डाल था उसे एक मुनि ने उपदेश देकर मुनि दीक्षा दी थी। वह मुनि होकर द्वादशांग का ज्ञाता हुआ। (त्रिषष्टि०)

(७) कयवन्ना (कृतपुण्य) सेठ ने वेश्यापुत्री से विवाह किया था। फिर भी उनके धर्मसाधन में कोई बाधा नहीं आई।

(८) चिलातीपुत्र ने एक कन्या का मस्तक काट डाला था।

वह चोर और दुराचारी तथा हत्यारा था। फिर भी उसे मुनि दीक्षा दी गई। (योग शास्त्र)

(९) मथुरा में जितशत्रु राजा और काला नाम की वेश्या के संयोग से कालवेशीकुमार हुआ। इस प्रकार व्यभिचारोत्पन्न वेश्यापुत्र कालवेशी कुमार ने मुनि दीक्षा ले ली। ('मथुरा-कल्प' जिनप्रभसूरि कृत और मुनि न्यायविजयी कृत टीका)

(१०) चाण्डाली के पुत्र हरिकेशी बक्ला ने मुनि दीक्षा ली। उनकी पूजा ऋषि, ब्राह्मण, राजा और देवों ने भी की (उत्तराध्ययन सूत्र)

(११) मथुरा में कुवेरसेना वेश्या से कुवेरदत्त और कुवेरदत्ता नामक पुत्र पुत्री हुये। दैवयोग से दोनों का विवाह हुआ। कुवेरदत्ता ने दीक्षा ली। उधर कुवेरदत्त ने अपनी माता को पत्नी बना लिया! और निमित्त मिलने पर वह भी मुनि हो गया। वेश्या कुवेरसेना ने भी जैनधर्म स्वीकार किया। (मथुरा कल्प)

(१२) मथुरा में जिनदास ने अपने दो बैलों को मरते समय णमोकार मंत्र दिया और उन बैलों ने आहार पानी का त्याग किया। जिससे वे मर कर नागकुमार देव हुये (म० क०)

(१३) पुष्पचूल और पुष्पचूला दोनों भाई बहिन थे। दोनों ने आपस में विवाह कर लिया। इस प्रकार वे व्यभिचारी बने। फिर भी पुष्पचूला ने दीक्षा ली और उसने कर्म बंधन काट डाले। (म० क०)

(१४) वस्तुपाल तेजपाल प्राग्वाट जातीय असराज की पत्नी कुमारदेवी के पुत्र थे। कुमारदेवी अन्नहिल्ल पट्टन की विधवा थी। असराज ने उससे पुनर्विवाह किया था। अर्थात् वस्तुपाल तेजपाल विधवा के पुत्र थे। इतने पर भी वस्तुपाल (प्राग्वट जाति) ने

विजातीय (मोढ जाति में) विवाह किया था। फिर भी उनने सन् १२२० में गिरनार का संघ निकाला। उसमें २१ हजार श्वेताम्बर और ३०० दिगम्बर जैन साथ थे। उसके बाद सन् १२३० में उनने आबू के जगविख्यात मन्दिर बनवाये। क्या आज जैन समाज में इस उदारता का अंश भी बाकी है? आज तो दस्साओं को पूजा से भी रोका जाता है!

(१५) जाति के विषय में स्पष्ट कहा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र आदि का व्यवहार कर्मगत (आचरण से) है। ब्राह्मणत्वादि जन्म से नहीं होता। यथा—

कम्मुणा बम्मणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तियो।
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा॥

—उत्तराध्ययन सूत्र अ० २५

(१६) जैनधर्म में जाति को प्रधान नहीं माना है। इसी विषय में मुनि श्री 'सन्तवाल' जी ने उत्तराध्ययन की टीका में १२वें अध्याय के प्रारम्भ में विवेचन करते हुये लिखा है कि:—

"आत्मविकाश में जाति बन्धन नहीं होते हैं। चाण्डाल भी आत्मकल्याण के मार्ग पर चल सकता है। चाण्डाल जाति में उत्पन्न होने वाले का भी हृदय पवित्र हो सकता है। हरिकेश मुनि चाण्डाल कुलोत्पन्न होकर भी गुणों के भण्डार थे। नरेन्द्र देवेन्द्र और महा पुरुषों ने उनकी वन्दना की थी। वर्ण व्यवस्था कर्मानुसार होती है। उसमें नीच ऊंच के भेदों को स्थान नहीं है। भगवान महावीर ने जातिवाद का खण्डन करके गुणवाद का प्रसार किया था। अभेद भाव का अमृतपान कराया और दीन हीन पतित जीवों का उद्धार किया था।"

प्रत्यक्ष में जातिगत कोई विशेषता मालूम नहीं होती किन्तु

विशेषता दिखाई देती है तप में। चाण्डाल का पुत्र हरिकेश तप से ही अद्भुत ऐश्वर्य और ऋद्धि को प्राप्त हुआ था। यथा:—

सक्खं खु दीसइ तवो विसेसो, न दीसइ जाइविसेस कोई।
सोवागपुत्तं हरिएससाहुं, जस्सेरिसा इड्ढि महाणुभागा॥

—उत्तराध्ययन सूत्र अ० १२

(१७) मथुरा के यमुन राजा ने ध्यानमग्न दण्ड मुनिराज का तलवार से घात किया। बाद में उस घातकी राजा ने मुनि दीक्षा ले ली। (म० क०)

(१८) मथुरा के राजा जितशत्रु के वेश्या पत्नी थी। उसका नाम काला था। उस वेश्या से कालवेशी कुमार हुआ और फिर उस वेश्या पुत्र ने युवावस्था में मुनि दीक्षा ग्रहण की। (उत्तराध्ययन सूत्र अ० २ सू० ३)

(१९) आजीवक सम्प्रदाय के अनुयायी कुम्हार सद्दालपुत्र को स्वयं भगवान महावीर स्वामी ने श्रावक के १२ व्रत दिये थे। और उसकी स्त्री अग्निमित्रा भी जैन धर्म में दीक्षित हुई थी। (उवासगदस्सओ० अ० ६)

(२०) महावीर स्वामी के समय में एक ईरानी राजकुमार अभयकुमार के संसर्ग से जैनधर्म में श्रद्धालु हुआ था। आर्द्रक नामक राजकुमार ने महावीर स्वामी के संघ में सम्मिलित होकर मुनिदीक्षा ली थी। और वह मोक्ष गया था (सूत्रकृतांग)

(२१) अब्दुर्रहमान फूलवाला नामक एक मुसलमान रत्नजड़िया देहली के थे। उन्होंने संवत १९७० के पूर्व स्थानकवासी जैनधर्म की शरण ली थी।

(२२) कुछ ही समय पूर्व श्वेताम्बराचार्य श्री० विजयेन्द्र सूरि ने जर्मन महिला मिस चारलौटी क्रौज़ को जैनधर्म की दीक्षा दी

थी और उसका नाम 'सुभद्राकुमारी' रक्खा था। अभी वह जैन-धर्म का पालन करती हैं और ग्वालियर स्टेट में रहती हैं। वह श्वेताम्बर मन्दिरों में पूजा करती हैं और जैनों को उनके साथ खान पान में कोई परहेज़ नहीं है।

(२३) श्वेताम्बराचार्य नेमिसूरि जी महाराज ने वर्तमान में कई शूद्रों को मुनि दीक्षा दी है। श्वे० में अनेक साधु शूद्र जाति के अभी भी हैं।

(२४) श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम अगास (गुजरात) के द्वारा जैन धर्म प्रचार अभी भी हो रहा है। वहां हजारों पाटीदार स्त्री पुरुषों को जैनधर्म की दीक्षा दी गई है। वे सब वहांके जैनमन्दिरों में भक्ति-भाव से पूजा, स्वाध्याय और आत्म ध्यान आदि करते हैं।

इस प्रकार श्वेताम्बर शास्त्रों में जैनधर्म की उदारता के अनेक प्रमाण भरे पड़े हैं। उनका उपयोग करन न करना श्रावकों की बुद्धि पर आधार रखता है। मात्र इन २४ उदाहरणों से बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि जैनधर्म परम उदार है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तो क्या किन्तु चाण्डाल, अछूत, विदेशी, म्लेच्छ, मुसलमान आदि भी जैनधर्म धारण करके स्वपर कल्याण कर सकते हैं। धर्म के लिये जाति का विचार नहीं है। उसके लिये तो आत्मशुद्धि की आवश्यकता है। एक जगह क्या ही अच्छा कहा है कि:—

एहु धम्मु जो आयरइ, बंभणु सुद्दवि कोइ।
सो सावहु, किं सावयहं अण्णु कि सिरि मणि होइ॥
—श्रीदेवसेनाचार्य।

अर्थात्—इस जैनधर्म का जो भी आचरण करता है वह चाहे ब्राह्मण हो चाहे शूद्र हो या कोई भी हो, वही श्रावक (जैन)

है। क्योंकि श्रावक के सिर पर कोई मणि तो लगा नहीं रहता।

कितनी अच्छी उदारता है ? कैसा सुन्दर और स्पष्ट कथन है ? कैसी बढ़िया उक्ति है ? जैनियो ! इससे कुछ सीखो और अपनी जैनधर्म की उदारता का उपयोग करो।

उपसंहार

जैनधर्म की उदारता के सम्बन्ध में तो जितना लिखा जाय थोड़ा है। जैनधर्म सभी बातों में उदार है। मैं जैन हूँ इसलिये नहीं किन्तु सत्य को सामने रखकर यह बात दावे के साथ कह सकता हूं कि "जितनी उदारता जैनधर्म में पाई जाती है उतनी जगत के किसी भी धर्म में नहीं मिल सकती"। यह बात दूसरी है कि आज जैनसमाज उससे विमुख होकर जैनधर्म को कलङ्कित कर रहा है। इस छोटी सी पुस्तक के कुछ प्रकरणों से जैनधर्म की उदारता का विचार किया जा सकता है। आज भी जैन समाज में कुछ ऐसे साधु पुरुषों का अस्तित्व है जो जैनधर्म की उदारता को पुनः अमल में लाने का प्रयत्न करते हैं। दि०मुनि श्रीसूर्यसागरजी महाराज के कुछ विचार इस सम्बन्ध में "पतितों का उद्धार" प्रकरण में लिखे गये हैं। उसके अतिरिक्त एक बार जब वे संघ सहित अलीगंज पधारे थे तब उनने एक जैनेतर भाई के प्रश्नों का उत्तर जिन उदार भावों से दिया था उनका कुछ सार इस प्रकार है—

"शूद्र यदि श्रावकाचार पालता हो और सच्छूद्र हो तो उसके यहां साधु आहार भी ले सकता है। शूद्र ही नहीं चाण्डाल तक धर्म का पालन कर सकता है। जैनधर्म ब्राह्मण या बनियों का धर्म नहीं है, वह प्राणीमात्र का धर्म है। आजकल के बनियों ने उसे तालों में बन्द कर रखा है। सच्छूद्र अवश्य पूजन करेगा। जिसे

आप नहीं छूना चाहते मत छुओ। मगर मन्दिर के आगे मानस्तंभ रखो वह उनकी पूजा करेंगे।" इत्यादि।

यदि इसी प्रकार के उदार विचार हमारे सब साधुओं के हो जावें तो धर्म का उद्धार और समाज का कल्याण होने में विलम्ब न रहे! मगर खेद है कि कुछ स्वार्थी एवं संकुचित दृष्टि वाले पण्डितमन्यों की चुंगल में फंस कर हमारा मुनि संघ भी जैनधर्म की उदारता को भूल रहा है।

अब तो इस समय सच्चा काम युवकों के लिये है। यदि वे जागृत होजावें और अपना कर्तव्य समझने लगें तो भारत में फिर वही उदार जैनधर्म फैल जावे।

उत्साही युवको! अब जागृत होओ, संगठन बनाओ, धर्म को पहिचानो और वह काम कर दिखाओ जिन्हें भगवान अकलंकादि महापुरुषों ने किया था। इसके लिये स्वार्थ त्याग करना होगा, पचायतों का झूठा भय छोड़ना होगा, वहिष्कार की तोप को अपनी छाती पर दगवाना होगा और अनेक प्रकार से अपमानित होना होगा। जो भाई बहिन तनिक तनिक से अपराधों के कारण जाति पतित किये गये हैं उन्हें शुद्ध करके अपने गले लगाओ, जो दीन हीन पतित जातियां हैं उन्हें सुसंस्कारित कर के जैनधर्मी बनाओ, स्त्रियों और शूद्रों के अधिकार उन्हें बिना मांगे प्रदान करो तथा समझाओ कि तुम्हारा क्या कर्तव्य है। अन्तर्जातीय विवाह का प्रचार करो और प्रतिज्ञा करो कि हम सजातीय कन्या मिलने पर भी विजातीय विवाह करेंगे। जैनधर्म के उदार सिद्धान्तों का जगत में प्रचार करो और सब को बतादो कि जैनधर्म जैसी उदारता किसी भी धर्म में नहीं है। यदि हमारा युवक समुदाय साहस पूर्वक कार्य आरम्भ करदे तो मुझे विश्वास है कि उसके साथ सारी समाज चलने को तैयार हो जायगी। और वह दिन भी दूर नहीं

रहेंगे जब स्थिति पालक दल अपनी भूल को समझ कर जैनधर्म की उदारता को स्वीकार करेगा। सच बात तो यह है कि—

"अयोग्यः पुरुषो नास्ति, योजकस्तत्र दुर्लभः"

आज हमारी समाज में सच्चे निस्वार्थी योजक की कमी है। उसकी पूर्ति भी युवकों के हाथ में है। वास्तविक धर्म की उदारता नीचे के चार पद्यों से ही मालूम हो जावेगी।

धर्म वही जो सब जीवों को भव से पार लगाता हो।
कलह द्वेष मात्सर्य भाव को कोसों दूर भगाता हो॥
जो सबको स्वतन्त्र होने का सच्चा मार्ग बताता हो।
जिसका आश्रय लेकर प्राणी सुखसमृद्धि को पाता हो॥१॥
जहां वर्ण से सदाचार पर अधिक दिया जाता हो जोर।
तर जाते हों निमिष मात्र में यमपालादिक अंजन चोर॥
जहां जाति का गर्व न होवे और न हो थोथा अभिमान।
वही धर्म है मनुजमात्र को हो जिसमें अधिकार समान॥२॥
नर नारी पशु पक्षी का हित जिसमें सोचा जाता हो।
दीन हीन पतितों को भी जो प्रेम सहित अपनाता हो॥
ऐसे व्यापक जैनधर्म से परिचित करदो सब संसार।
धर्म अशुद्ध नहीं होता है खुला रहे यदि सबको द्वार॥३॥
प्रेमभाव जग में फैलादो और सत्य का हो व्यवहार।
दुरभिमान को त्याग अहिंसक बनो यही जीवन का सार॥
जैनधर्म की यह उदारता अब फैलादो देश विदेश।
'दास' ध्यान देना इस पर यह महावीर का शुभ सन्देश॥४॥

'उदारता' पर शुभ सम्मतियां।

'जैनधर्म की उदारता' आचार्यों, मुनियों, त्यागियों, पण्डितों, बाबुओं और सर्वसाधारण सज्जनों को कितनी प्रिय मालूम हुई है वह नीचे प्रगट की गई कुछ सम्मतियों से स्पष्ट प्रतीत हो जायगा। दूसरे इस पुस्तक की लोकप्रियता का यह प्रबल प्रमाण है कि इसकी हिन्दी में द्वितीयावृत्ति अल्प समयमें ही निकालनी पड़ी है। दिगम्बर जैन युवक संघ सूरतने इसका गुजराती अनुवाद भी प्रगट किया है तथा श्रीधर दादा धावते सांगली ने इसे मराठी भाषा में प्रगट किया है। इस प्रकार तीन भाषाओं में प्रगट होने का अवसर इसी पुस्तक को प्राप्त हुआ है। 'उदारता' पर अनेक सम्मतियां प्राप्त हुई हैं। उनमें से कुछ सम्मतियों का मात्र सार यहां प्रगट किया जाता है।

(१) दिगम्बर जैनाचार्य श्री० सूर्यसागरजी महाराज—

जैनधर्म की उदारता लिखकर पं० परमेष्ठीदासजी ने समाज का बहुत ही उपकार किया है। वास्तव में ऐसी पुस्तकों का समाज में अभाव सा प्रतीत होता है। लेखक ने इस कमी को दूर कर सिद्धान्तानुसार जैनधर्म की उदारता प्रगट की है। विद्वान् लेखक का यह प्रयास श्रेयस्कर है। आपकी इस कृति से हम प्रसन्न हैं।

(२) त्यागमूर्ति बाबा भागीरथजी वर्णी—

पुस्तक पढ़ी। मैं तो इतनाही कहता हूं कि इसका अनेक भाषाओं में अनुवाद करके लाखों की संख्या में प्रचार किया जाय। ताकि जैनधर्म के विषय में संकीर्ण भाव मिटकर उदार भावना प्रगट हो।

(३) धर्मरत्न पं० दीपचन्दजी वर्णी—

बाबाजी की इस सम्मति से मैं भी पूर्ण सम्मत हूं।

(४) त्यागी नौरंगलालजी—

यह पुस्तक बहुत अच्छी है। ऐसी पुस्तकों से ही जैनधर्म का उद्धार हो सकता है। जैनों को इसे पढ़कर अमल करना चाहिये।

(५) न्यायकाव्यतीर्थ श्वे० मुनि श्री हिमांशु विजय जी तर्कालंकार—

जैन समाज में ऐसे निबंधों की आवश्यक्ता है। अनुदार पंडित और मुनि लोग इसे पढ़ेंगे तो उन्हें भी सन्तोष होगा। पुस्तक शास्त्र प्रमाण पूर्वक लिखी गई है।

(६) न्यायतीर्थ श्वे० मुनि श्री न्यायविजयजी महाराज—

लेखक का यह प्रयत्न योग्य और प्रशंसनीय है। इसे और भी विस्तार से लिखकर जैनधर्म की उदारता पर पड़ा हुआ परदा हटाने का प्रयत्न होना चाहिये।

(७) श्वे० मुनि श्री० तिलकविजयजी महाराज—

जैनधर्म की उदारता पुस्तक को पढ़ कर मालूम हुआ कि दिगम्बर आम्नाय के धर्म नेता कहलाने वाले पण्डितों की अपेक्षा पं० परमेष्ठीदासजी न्यायतीर्थ ने जैनधर्म के वास्तविक स्वरूप को अधिक प्रमाण में समझा है। मेरी समझ में ऐसी पुस्तकों का जितना अधिक प्रचार होगा उतना ही समाज को मिथ्यात्व छूटने का अवसर मिलेगा।

(८) श्वे० मुनि श्री फूलचन्दजी धर्मोपदेष्टा—

मैं मानता हूं कि इस पुस्तक का प्रचार प्रत्येक जैन के घरों तक होना चाहिये। यदि यह पुस्तक १८वीं या १६ वीं शताब्दी में लिखी जाती तो लेखक को निर्विवाद ऋषि कहने लगते। इसमें

जितने भी प्रमाण हैं वे सब पुष्ट प्रमाण हैं । दिगम्बर जैन समाज का कर्तव्य है कि लेखकके विचारों को दूर दूर तक फैलावे । आप के एक बालक ने पुस्तक ही नहीं लिखी है बल्कि आपको उन्नति के शिखर पर पहुँचने के लिये बलवती सम्मति दी है । यदि हमारी समाज का कोई मुनि इस विषय की पुस्तक लिखता तो मैं उसके पैरों में लोट जाता । परन्तु गुण ग्राहिता की दृष्टि से परमेष्ठी को भी धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता ।

(९) स्थानकवासी मुनि श्री पं० पृथ्वीचन्द्रजी महाराज—

जैनधर्म की उदारता कितना सुन्दर एवं औचित्यपूर्ण नाम है ! जैनधर्म पर-धर्म के नाम पर लगे हुये कलंक को धो डालने का जो सामयिक कर्तव्य था वही इस पुस्तक में किया गया है । इसमें जो भी लिखा है वह शास्त्रमूलक है । यही इस पुस्तक की विशेषता है । इसी लिये पं० परमेष्ठीदास जी विशेष धन्यवाद के पात्र हैं । इसमें यदि श्वे० प्रमाण भी लिये जाते तो इसका प्रचार क्षेत्र बढ़ जाता । (अबकी बार इसी सूचना को ध्यान में रख कर कुछ श्वे० प्रमाण भी रखे गये हैं ।) लेखक के विचारों से मैं सहमत हूं । जैन समाज इस पुस्तक का हृदय से स्वागत करे और उस मार्ग का अनुसरण करके प्राचीन गौरव की रक्षा करे ।

(१०) स्याद्वादवारिधि जैन सिद्धान्तमहोदधि न्यायालंकार पं० वंशीधरजी जैन सिद्धान्त शास्त्री इन्दौर—

जैनधर्म की उदारता पढ़ने से इन बातों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है कि पहले जमाने में जैनधर्म का किस तरह प्रसार था, शुद्धि का मार्ग कैसा प्रचलित था, तथा जाति और वर्ण किस बात पर अवलम्बित थे ।

(११) विद्यावारिधि जैनदर्शन दिवाकर पं० चम्पतरायजी जैन बार एट ला (लंडन)

यह पुस्तक बहुत ही सुन्दर है। इसमें जैनधर्म के असली स्वरूप को विद्वान लेखक ने बड़ी ही खूबी के साथ दर्शाया है। उदाहरण सब शास्त्रीय हैं। उनमें ऐतराज की कोई गुंजाइश नहीं है। ऐसी पुस्तकों से जैनधर्म का महत्व प्रगट होता है। इनकी क़द्र होनी चाहिये।

(१२) पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार सरसावा—

पुस्तक अच्छी और उपयोगी है। यह जैनधर्म की उदारता के साथ लेखक के हृदय की उदारता को भी व्यक्त करती है। जो लोग अपनी हृदय संकीर्णता के कारण जैन धर्म को भी संकीर्ण बनाये हुये हैं वे इससे बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

(१३) व्याकरणाचार्य पं० बंशीधरजी जैन न्यायतीर्थ बीना—

पुस्तक समयोपयोगी है। इसलिये समय को पहिचानने वालों के लिये उपयोगी होनी ही चाहिये। परन्तु शास्त्रीय प्रमाणों का बल पाकर यह पुस्तक स्थितिपालक दलको भी उपेक्ष्य नहीं हो सकती।

(१४) साहित्यरत्न पं० सिद्धसेनजी गोयलीय—

पुस्तक बहुत अच्छी है। प्रत्येक भाषा में अनुवाद करके इसका लाखों की संख्या में मुफ्त प्रचार करना चाहिये।

(१५) पं० छोटेलालजी जैन सुपरि० दि० जैन बोर्डिङ्ग अहमदाबाद—

लेखकने यह पुस्तक लिखकर समाजका बड़ा उपकार किया है। प्रत्येक भाषा में इसका अनुवाद करके वितरण कीजाय तो निःसंदेह

मनुष्य जाति का भारी उपकार होगा। मैं इसका गुजराती अनुवाद छपाकर प्रचार कर रहा हूँ।

(१६) प्रोफेसर चन्द्रशेखरजी शास्त्री एम. ओ. पी. एच. देहली—

लेखकने प्रत्येक विषयको शास्त्रीय प्रमाणों से सिद्ध किया है। वास्तव में पुस्तक अति उत्तम है। घर घर में इसका आदर होगा।

(१७) पं० भगवंत गणपति गोयलीय सागर—

जैनधर्म की उदारता में जैन ग्रंथों की ताजीरात से पतितों का उद्धार, ऊंच नीच की समता, वर्ण गोत्र परिवर्तन तथा शूद्रों और स्त्रियों के उच्चाधिकार आदि को ऐसा सिद्ध किया है कि एक बार कूपमण्डूकताका एकान्त पुजारी भी सहम उठेगा। इसे लिखकर अपने समाज के अंधेरे मस्तिष्क में प्रकाश फैंकने का प्रयत्न किया है।

(१८) बा० माईदयालजी जैन बी० ए० (आनर्स) बी० टी० अम्बाला—

पुस्तक मननीय, पठनीय और प्रचार योग्य है। जैनधर्म और जैन समाजका गला अनुदारताकी रस्सी से रुंध रहा है। लेखक ने उस फंदे को ढीला करने का प्रयत्न किया है।

(१९) भारत विख्यात उपन्यास लेखक बा० जैनेन्द्रकुमारजी देहली—

जो उदार नहीं है वह धर्मका अपलाप है। यदि समाज को अपनी अनुदारता का कुछ भी मान हो जाय तो पुस्तक लिखने के उद्देश्य की सिद्धि समझनी चाहिये।

(२०) बा० लक्ष्मीचन्दजी जैन एम० ए० देहली—

पं० परमेष्ठीदास जी ने जैनधर्म की उदारता लिखकर अज्ञान की गहरी नींद में सोती हुई जैन समाज को बल पूर्वक झंझोल डालने का साहसिक प्रयत्न किया है। जैनधर्म की उदारता समझने के लिये हृदय उदार मन शुद्ध और मस्तिष्क परिष्कृत होना चाहिये। लेखक के पास यह सब है। वे इस युगके जागृत युवक हैं। उन्होंने जैनधर्म के सुन्दर रूप को देखा है। और समाज को बताया है। निःसंदेह यह ट्रेक्ट एक चिनगारी है।

(२१) प्रोफेसर वी० एम० शाह एम० ए० सूरत—

I have read Pandit Parmeshthi Das ji's Jain Dharm Ki Udarta, with great pleasure and satisfaction. The learned writer has ably pointed out the noble principles of Jainism which clearly show that it deserves to be called the Universa l Religion. The Jain Scriptures are extremely reasonable and just in laying down rules for the mutual dealing of human beings.

There is no distinction of a family high or low in the observance of religion. Men and women Kshatri, Brahman, Vaish & Shudras, all have equal rights for religious practice and liberation. There is nothiug like touch-ability or untouchablity in Jainism, Pandit

Parmeshtidasji has proved these things in his small book with many illustrations and quotations from the Jain Granthas.

The book will do good.

V. M. SHAH, M. A.
Professor of Ardhamagadhi
M. T. B. College, Surat.

मैंने पंडित परमेष्ठीदासजी की धर्म पुस्तक जैनधर्म की उदारता को निहायत खुशी और इतमिनान के साथ पढ़ा काबिल रचयिता ने जैनधर्म के शरीफाना सिद्धान्तों का निहायत काबलियत के साथ उल्लेख किया है जिससे साफ तौर पर जाहिर होता है कि जैनधर्म विश्वव्यापी धर्म बनने का हकदार है। मनुष्य मात्र के जीवन के जो सिद्धान्त जैन शास्त्रों में रखे गये हैं वह निहायत ही मुदल्लिल (सप्रमाण) और मुन्सफाना हैं किसी भी परिवार को कोई नस्ली इम्तियाज नहीं हो गया है क्षत्री ब्राह्मण वैश्य और शूद्र सब के अख्तियारात बराबर हैं और धर्मकार्य में सबका समान हक है। जैनियों में अछूत का कोई प्रश्न नहीं रखा गया है।

पंडितजी ने इन सारी बातों को इस छोटी सी पुस्तक में निहायत साफ तौर पर और प्रमाण के साथ साबित किया है और बहुत से उदाहरण देकर समझाया है इस पुस्तक के छपने से जैन धर्म पर एक नई रोशनी पड़ी है और जनता को बहुत कुछ लाभ पहुंचेगा।

इसके अतिरिक्त श्री० रूपचन्दजी गार्गीय पानीपत, जैन जाति भूषण ला० ज्वालाप्रसादजी रईस महेन्द्रगढ़, श्री० राजमलजी जैन

पवैया भोपाल, हकीम पं० बसन्तलालजी जैन झांसी, पं० सुन्दरलालजी जैन वैद्यरत्न, पं० शिखरचन्द्रजी जैन वैद्य फर्रुखनगर, पं०घनश्यामदासजी जैन शास्त्री बहरामघाट, पं०रवीन्द्रनाथजी जैन न्यायतीर्थ रोहतक आदि अनेक विद्वानों ने अपनी शुभ सम्मतियां प्रदान की हैं जिन्हें विस्तार भय से यहां प्रगट नहीं किया है।

तथा जैन मित्र, दिगम्बर जैन, सुदर्शन, जैन ज्योति, प्रगति जिन विजय, स्वराज्य, प्रताप, कर्मवीर, नवयुग, बम्बई समाचार, जैन, लोकवाणी आदि अनेक पत्रों ने भी मुक्त कण्ठ से जैनधर्म की उदारता की प्रशंसा की है। आशा है कि जैन समाज इस द्वितीयावृत्ति को प्रथमावृत्ति की अपेक्षा और भी अधिक प्रेम से देखेगी और जैनधर्म की उदारता को अपने आचरण में उतारने का प्रयत्न करेगी। —प्रकाशक

पुस्तक मिलने पते—

१—ला० जौहरीमल जी जैन सर्राफ बड़ा दरीबा, देहली।

२—दिगम्बर जैन पुस्तकालय सूरत, (हिन्दी और गुजराती)

३—जैन साहित्य पुस्तक कार्यालय, हीरा बाग--बम्बई।

४—श्रीधर दादा धावते--सांगली (मराठी)।

गयादत्त प्रेस, बाग दिवार देहली में छपा।